25 रुपये

अंक – 26

अक्तूबर 2008 से अक्तूबर 2009

चन्द्रताल

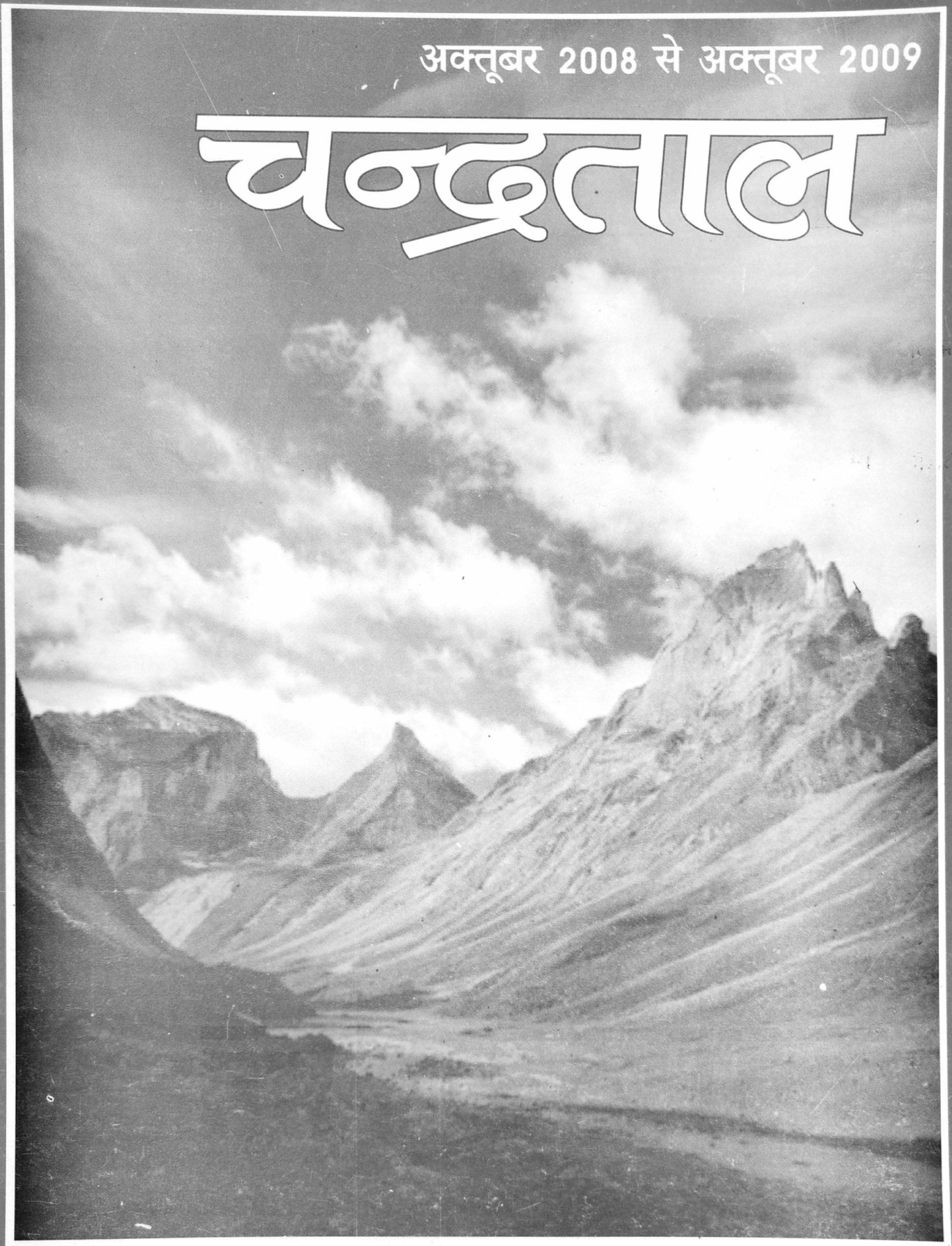

संस्थापक
स्वागला एरतोग,
लाहुल–स्पीति में कला एवं संस्कृति उत्थान
हेतु सोसाईटी (रजि0) संख्या ल.स./42/93
सोसाईटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट 21,1960

संपादक
सुश्री डॉ0 छिमे शाशनी

उप संपादक
बलदेव कृष्ण घरसगी

संपादकीय सलाहकार
बिशन दास परशीरा
अजेय कुमार

सम्पर्क
संपादक –चन्द्रताल
पोस्ट बॉक्स 25, मुख्य डाकघर ढालपुर
कुल्लू – 175101 (हि0प्र0)

अधिकृत एजेंट

केलंग
श्री राम लाल, राम लाल की हटटी
(शिव मंदिर के पीछे), अप्पर केलंग
लाहुल–स्पीति

उदयपुर
श्री शिव लाल, शिवा जनरल स्टोर,
निकट मृकुला देवी मंदिर, उदयपुर,
लाहुल–स्पीति

चन्द्रताल त्रैमासिक सहयोग राशि
वार्षिक एक सौ रुपये
एक प्रति पच्चीस रुपये

पत्रिका पूर्णत: अव्यवसायिक तथा संपादन
व प्रबंधन अवैतनिक है।

स्वगला एरतोग सोसाईटी रजि. के लिए
प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार
द्वारा सीटी कम्पयूटर ढालपुर कुल्लू से
टाईप सैटिंग व गुप्ता प्रिंटर्ज कुल्लू से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं उनमें
सपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

संपादकीय 2

पाठकीय 3
प्रो॰ डी॰डी॰ शर्मा
गणेश भारद्वाज गनी

कविता 4–6
वापसी – अशोक रारिक
साथ–साथ – गणेश गनी
नदी गाने लगी – गणेश गनी
एहसास – शेर सिंह मेरूपा
पगडण्डी – उरसेन
इतज़ार – अशोक नाग
माँ – डॉ॰ दयानन्द गौतम

कहानी
और वह हार गई – डॉ॰ दयानन्द गौतम 7–8

लोकगाथा
रूपी रानी की बलि – स्मिता लोप्पा 9–10

कसौटी
वैश्विक प्रतिस्पर्धा के युग में बन्द दरवाज़े की नीति घातक – बलदेव कृष्ण घरसगी 11

क्षेत्रीय दृष्टि
लाहुल आलू सहकारी सभा का वार्षिक अधिवेशन और आप – बलदेव कृष्ण घरसगी 12

लोक संस्कृति
फागली अथवा कूं या कुस – रामनाथ साहनी 13–14
ब्रंगेस, फोरोग तथा चम छ्वड़ज़ि की प्रतीकात्मक महत्ता एवं निहितार्थ – सतीश कुमार लोप्पा 15–18

संस्मरण
तिब्बत में ढाई वर्ष–एक संस्मरण – के॰ अगरूप लाहुली 19–21

कला
जनजातीय क्षेत्र की अमूल्य कलानिधि थनका – मौलू राम ठाकुर 22–24
लाहुल घाटी में थंका चित्रण की परम्परा – सुखदास चित्रकार 25

देव परम्परा
कुलूत जनपद में नागों व अप्सराओं का वर्चस्व – तेज राम नेगी 26–29

विविध
बौद्ध धर्म और पश्चिमी हिमालय में उसका प्रसार – शिवचन्द ठाकुर 30–32
भटकती आत्मा शान्त हुई – सत्यपाल भटनागर 33–34
द्वन्द्व की समाप्ति व संकल्प की पूर्णता – सीता राम गुप्ता 35–36

लोकभाषा
विलुप्ति के कगार पर पहुंचे पटनी बोली के कुछ शब्द – विकास ओथडबा 37

शोध
लालचन्द प्रार्थी की दृष्टि में ज़म्बलू और मलाणा – तोबदन 38–39

जीवनी
मिलारेपा की जीवनी : पीठ का पहला घाव – ठिनले नमज़ल एव अजेय 40–43

धर्म
ओं मणि पद्मे हूँ – कालमुक मंगोलियाई बौद्ध केन्द्र न्यूजर्सी 44–45
जब मृत काग जीवित हो उठा – सतीश लोप्पा 45

सम्पादकीय

बुद्ध पूर्णिमा के दिन आचार्य संगा तेन्ज़िन ने बौद्ध धर्म की पूजा पद्धति में विद्यमान प्रतीकात्मकता, विशेष रूप से 'तिङ' के सम्बन्ध में जो जानकारी दी, इस पत्रिका के माध्यम से पाठकों को भी इन प्रतीकार्थों से अवगत कराने का प्रयास है। 'तिङ' कांसे या तांबे की छोटी–छोटी कटोरियां जिन्हें बौद्ध धर्मानुयायी प्रतिदिन पूजा–अर्चना से पूर्व जल तथा अन्य पदार्थों से पूरित करते हैं। इनकी संख्या आठ होती है। अभ्यागत के स्वागत के लिए घर में जो–जो उपक्रम किया जाता है – जैसे पानी पिलाना, हाथ–पैर धुलवाना, आरती उतारना आदि–आदि, वही उपक्रम अराध्य महात्मा बुद्ध के अभिनन्दन के प्रतीक हैं ये संभृत पात्र। प्रथम दो 'तिङ' जल से आपूरित किया जाता है जिसे अरघम और परतिम कहा जाता है। 'अरघम' अराध्य के आगमन पर जल अर्पण का तथा परतिम (शवसिल) दरवाज़े पर हाथ–पैर धुलवाने का प्रतीक है। तीसरा 'तिङ' जो पुष्युकहलाता है, जिसे जौ, चावल, फूल आदि से भरा जाता है, यह अराध्य के स्वागत के लिए माल्यार्पण का प्रतीक है। चौथा 'तिङ' – 'द्युपिद' जिसमें धूप, अगरबत्ती रखते हैं, अराध्य के आरती उतारने का प्रतीक है, साथ ही बाहर से आने वाले दुष्प्रभाव को दूर करने का द्योतक भी। पांचवां तिङ'–'आलोक' जिसमें दीया, मोमबत्ती रखा जाता है; का आशय है अराध्य जो हमारे घर पधारे हैं उनके आलोक से घर हमेशा देदीप्यमान रहे। छटा 'तिङ'– गेन्दे, इसको भी जल से आपूरित किया जाता है। यह शुद्धि का प्रतीक है अर्थात भोजन आदि से पूर्व हाथ–मुंह शुद्ध करना। सातवां 'तिङ'–'निविदि' जिसमें तोरमा (शेल्से) डाला जाता है, जो भोजन, दान आदि अर्पित करने का प्रतीक है। आठवां 'तिङ'–'शाप्ता' इसमें शंख, ड्रिल्बु, बांसुरी किसी भी वाद्ययंत्र का प्रतीक रखा जाता है। यह नृत्य, संगीत व मनोरंजन द्वारा अतिथि के स्वागत का प्रतीक है। वास्तव में इन पात्रों को विशेष रूप से जल से आपूरित करने का भाव यह होता है कि हम शुद्ध मन से अराध्य का स्वागत करते हैं।

प्रतीक किसी भी संदर्भ को संप्रेषणीय बनाने में सक्षम होते हैं क्योंकि यह जनसमुदाय के लिए जाने पहचाने और ग्राह्य होते हैं। इस पूजा पद्धति को मानवीय भावों से जोड़ा गया है। अराध्य के आगमन पर भक्त द्वारा उसकी अभ्यर्थना के सुन्दर भाव की अभिव्यंजना अतुलनीय है।

इस अंक के **'ओं मणि पद्मे हूँ '** लेख में यह षड़ाक्षर मन्त्र प्रतीकात्मक है। 'ओं' साधक के अपवित्र काय, वाणी तथा चित्त के साथ बुद्ध की पवित्र एवं उत्कृष्ट कार्य वाणी तथा चित्त के भी प्रतीक हैं। 'मणि' पर कल्याण की भावना से बोधि प्राप्ति का उपाय– करुणा प्रेम का प्रतीक है तो 'पद्मे' (कमल) प्रज्ञा तथा जीवन में कार्य – कारण की निरन्तरता का प्रतीक है। 'हूँ' युगनद्धता अर्थात प्रज्ञा और उपाय के ऐक्य का प्रतीक है। **'ब्रंगेस, फोरोग तथा च़म छ्वङ्ज़ि'** लेख में लेखक ने लाहुल के पटन क्षेत्र में प्रचलित विवाह के रस्मों में निहित प्रतीकार्थ का विस्तार से परिचय दिया है। इन प्रतीकों में इस क्षेत्र के सामाजिक जीवन के नैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भावनात्मक मूल्य निबद्ध हैं। विवाह के अवसर पर ये संस्कार समाज के समष्टि मानस और व्यष्टि मानस पर रागात्मकता का संचार कर देते हैं। आज इन प्रतीकों में छुपे गूढ़ार्थ और व्यापकता विस्मृति की गोद में विलुप्त होता जा रहा है। शायद बाह्य संस्कृति के प्रभाव के कारण इन संस्कारों के वैशिष्ट को नज़रअन्दाज़ किया जा रहा है।

सम्पादक

पाठकीय

संपादक महोदय,

चन्द्रताल का अंक 25 प्राप्त हुआ। इस कृपा के लिए धन्यवाद! आप लोग पता नहीं किस भावना से प्रेरित होकर मुझे याद करते रहते हैं। लाहुल की मिट्टी से तो यद्यपि मेरे पार्थिव शरीर का निर्माण नहीं हुआ पर लाहुल (ल्हा–युल 'देव लोक') की संकल्पना मेरे लिए देवभूमि की संकल्पना के समकक्ष ही है क्योंकि इस भूमि के साथ मेरा अनेक रूपों में सम्पर्क रहा है। स्व॰ के॰ अंगरूप जी से तो मेरा सन 1953 से बनारस से ही सम्पर्क रहा है। चण्डीगढ़ आकर तो वे मेरे सहयोगी ही बन गए थे। स्व॰ आचार्य प्रेम सिंह न केवल कुछ समय के लिए मेरे शिष्य रहे अपितु बाद में लाहुल के सन्दर्भ में वे मेरे पथ प्रदर्शक व सूचक भी बन गए। आज इन लोगों के नामों से पूर्व स्वर्गीय शब्द लिखते हुए मन बड़ा भावुक हो रहा है। मेरे लाहुल प्रवास काल में वहां के लोक संपर्क अधिकारी श्री छेरिंग दोर्जे तथा उनके सुपुत्र श्री उर्ग्यन दोर्जे का जो सहयोग मिला उससे तो मैं उऋण हो ही नहीं सकता। मुझे इन सभी के घर का आतिथ्य ग्रहण करने तथा लाहुल की बोलियों तथा वहां के लोक जीवन को देखने और समझने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। केलंग में तो मैं कई दिन रहा हूं। एक बार अपनी अनुसन्धान योजना के प्रवास काल में तथा दो बार वहां पर आयोजित बौद्ध सम्मेलनों के सन्दर्भ में। स्पीति जाने के लिए कुन्ज़ोम पास तक जाकर मार्ग अवरुद्ध हो जाने से लौटना पड़ा था। वैसे मैंने अपनी पुस्तक ''हिमालय की विस्मय भूमि लाहुल'' में तथा अपने कई लेखों में लाहुल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं पर भी काफी लिखा है।

इस अंक की कहानी –'अन्तहीन' को पढ़ते हुए तो मेरे मानस पटल पर अपनी प्रथम यात्रा की स्मृतियां जीवन्त हो उठी हैं। 'रिश्तों का घालमेल' तो एक ऐसी समस्या है जो अंन्य समाजों के भी सम्मुख आ खड़ी है। डॉ॰ बनारसी लाल का लेख आज की उभरती हुई सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डालता है।

किमधिकम्, आशा है भविष्य में भी आपका स्नेह सम्बल मिलता रहेगा। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो सूचित करें।

–प्रो॰ डी॰डी॰ शर्मा

संपादक महोदय,

आधुनिक युग में ''इलैक्ट्रोनिक मीडिया'' इतना हावी हो चुका है कि पुस्तकों, पत्रिकाओं व ''प्रिंट मीडिया'' की तरफ लोगों का आकर्षण कम होने लगा है। आज पुस्तकालयों में वो भीड़ नज़र नहीं आती जो आज से एक दशक पहले नज़र आती थी। ऐसे में साहित्यकार भी लिखे तो किसके लिए लिखे। नई पीढ़ी की रुचि साहित्य में नहीं है उसे तो टेलीविजन, इन्टरनेट, मोबाइल आदि से ही फुर्सत नहीं है। साहित्य को पढ़ने के लिए समय व धैर्य चाहिए। आज की भाग–दौड़ भरी ज़िन्दगी में समय की बहुत कमी है।

हमारे देश में दिग्गज साहित्यकारों का साहित्य आम जनता की पहुंच से परे है। यदि आम आदमी कोई साहित्यिक पुस्तक खरीदना चाहे तो भी मूल्य ऊंचा होने के कारण खरीद नहीं पाता। ऐसे में प्रकाशकों का भी दायित्व बन जाता है कि उचित मूल्यों में उच्च स्तरीय साहित्य को प्रकाशित कर आम आदमी तक पहुंचाएं। हमें यह जान लेना चाहिए कि साहित्यकारों ने समाज में जागरूकता फैलाने में अहम भूमिका अदा की है। लेकिन यह भी एक त्रासदी है कि वर्तमान समय में इलैक्ट्रोनिक मीडिया भी साहित्य के महत्त्व को नहीं समझ पाया है। ग्लैमर व फिल्मी दुनियां ने मीडिया में अपना वर्चस्व बनाए रखा है। मीडिया भी विज्ञापनों के लिए सनसनीखेज खबरें दिखाकर खूब धन तो बटोर रहा है लेकिन समाज के युवा वर्ग को गलत दिशा दे रहा है। पिछले कुछ अर्से में देश ने बहुत से उच्चकोटि के विद्वानों को खोया है। यह क्षतिपूर्ति कभी नहीं हो सकती। नौजवान साहित्यकारों ने भी अब एक मंच पर आने की कोशिशें की हैं। लेकिन देखना यह है कि क्या मतभेदों को भुलाकर साहित्यकार एक मंच पर आकर संगठित हो पाएंगे। समय की भी यही मांग है कि वर्तमान में दिशाविहीन समाज को लेखक अपनी लेखनी की ताकत से संरचनात्मक समाज में बदल सकते हैं। आवश्यकता है तो बस साहित्य को आम जनता तक आसानी से पहुंचाने की। आज हम बल्कि अधिक संसाधन युक्त हैं। हमें मशीनी युग में आधुनिक आविष्कारों का सदुपयोग करना होगा तभी बेहतर समाज का निर्माण सम्भव है। अधिक से अधिक साहित्यिक संगोष्ठियों, कवि सम्मेलनों, कला प्रदर्शनियों व सृजनात्मक कार्यों को अन्जाम देकर समाज से अपराधों को कम किया जा सकता है। आज ज़रूरत है एक पहल करने की। ''चन्द्रताल'' ने भी एक पहल की थी और आज 25वां सिल्वर जुबली अंक पढ़ने को मिल रहा है। यह कोशिश जारी रहनी चाहिए तथा नए–नए लोगों को आगे आकर इस कार्य को और आगे बढ़ाना है। पत्रिका में जो सुधार व निखार आया है वो सराहनीय है इसके लिए आपको बधाई और साधुवाद।

– गणेश भारद्वाज 'गनी'

वापसी

याद आता है वह ज़माना,
जहां हर घर में था आना जाना,
रिश्तों का वह ताना–बाना,
हर महफिल में ज़ोर गाना–बजाना,
मां के हाथों में ताज़ा खाना,
बाप के डर से वह छुपना छुपाना,
बूढ़े शाख से टंगा वह झूला पुराना,
दोस्तों के संग वह खेलना खिलाना।
लगता है कि बस कल की बात थी,
बस बीती सिर्फ इक रात है।
पर वह कितनी लम्बी रात थी,
कि बदल गई अब सारी बात है।
बस इसी लम्बी रात में,
छूट गई मुझसे वह पूरी बस्ती,
वह खुली गांव की गलियां,
हरदम आओ खेलें कहती रहती,
वह नल में चश्मे का पानी,
जो दिन–रात पनघट को चूमती रहती,
पड़ोस के मर्द हों या औरत,
हाल सुबो–शाम पूछती रहती,
अपनी इक पहचान थी,
पर आज पहुंचा हूं इक ऐसे शहर में,
जहां भीड़ है अकेलों को जोड़ कर।
शहर इतना अजीब है,
कि गया है आसमान ज़मीं को छोड़ कर,
दीवारें तो इमारत उठाए ज़िन्दा हैं,
पर लोग जी रहे हैं ज़िन्दगी छोड़ कर,
दिन में भी धूप नसीब नहीं,
सूरज बनाए हैं दीयों को जोड़ कर,
अमीरों ने बनाए हैं महल,
बस्तियां गरीबों की तोड़ कर,
सब दौड़ा–भागा जा रहा है,
सोचता भी नहीं कि देखें कभी मुड़ कर।
ज़िन्दगी की दौड़ में दौड़ता,
फिर इक शाम होती है,
कहीं से इक आवाज़ गूंजती है,
कुछ यूं पैगाम सुनाती है,
कि तेरे मां का दामन आंसुओं से गीला है,
बाप का बदन पसीने से ढीला है,
बहन का हाथ अभी करना पीला है,
घर बन गया एक बेजान टीला है।
बूढ़ी मां की लड़खड़ाती कदमें तुम्हें बुला रही हैं,
बूढ़े बाप की धुन्धलाती नज़रें तुम्हें बुला रही हैं।
जवान बहन की गीली आंखें तुम्हें बुला रही हैं।
तपती धूप में बैठे घर की सीढ़ियां तुम्हें बुला रही हैं।
आज हिसाब का वक्त आया है,
तुम्हारी वापसी का वक्त आया है,
चुकाना तुम्हें अपना कर्ज़ है,
इसलिए वापसी तुम्हारा फर्ज़ है,
यूं तो खुदा के इस जहां पर ,
कुछ भी है हो सकता,
मगर मां के आंसू, बाप का खून और बहन का
पसीना पानी नहीं हो सकता,
पानी नहीं हो सकता।
इसलिए तुम्हारी वापसी ज़रूरी है,
तुम्हारी वापसी बहुत ज़रूरी है।

– अशोक, वैज्ञानिक, रारिक

साथ–साथ

बाज़ारवाद के युग में जुलाहे को कौन पूछे
उसे कौन सा डिज़ाईन बुनना है।
मैं कोई कवि हूं और तू एक कविता
मन में कई बार आती ऐसी कल्पना है।
हमारी दिशाएं अलग कैसे होंगी
एक ही राह पर साथ चलना है।
इक दूजे बिना अधूरी है जो
उस कहानी को साथ–साथ लिखना है।
कुछ देर के लिए उलझ गए थे जो
मरासिम् के ताने–बाने फिर बुनना है।
कोई नाव से पूछे तो सही
आज उसे किस दिशा में चलना है।

– गणेश 'गनी'

साभार : 'अनुभूतियां' काव्य संग्रह

नदी गाने लगी

सूरज की धूप
धार चढ़ने लगी है,
यूं वादी में
शाम ढलने लगी है।
यह शाम और
आरजू उनकी
कितनी बढ़ने लगी है,
कैसी होगी यह रात
चांदनी पहाड़ उतरने लगी है।
और भी सुरीला गीत
चिनाब गाने लगी है,
सबा इन गीतों को
और मधुर संगीत देने लगी है।
गांव शहर बन गए
भाग–दौड़ बढ़ने लगी है,
दोस्त अजनवी हो गए
ज़िन्दगी बेमाने लगने लगी है।
दर्द इस दिल को भी हुआ
और कविता बनने लगी है,
तुम पास आ के बैठ गए
ज़िन्दगी संवरने लगी है,
अब छोड़ मत जाना
खुशियां पहलू में आने लगी हैं।

– गणेश 'ग़नी'

साभार : 'अनुभूतियां' काव्य संग्रह

अहसास

रिश्तों की शुरुआत होती है अहसास से,
अहसास न हो अगर रिश्तों में
तो कोई रिश्ता मज़बूत न होता
अहसास ही तो है जो दो लोगों
को एक बनाता है
अहसास जीवन में रोशनी की
तरह है जो हमेशा उजाला करती है
अहसास वो बंधन है जो
लोगों को एक दूसरे से
बांधे रखती हैं।
आज आते हैं नज़र यहां–वहां
अहसास न हो तो रिश्ते
नाम के ही होते हैं
जीवन में लानी हो बहार
तो इसका करो श्रृंगार
अहसास ज़रूरी है जीवन में
रिश्तों में लाना है मज़बूती
अपनों में लाना है विश्वास
सपनों में लाना है निखार
यादों को रखना है अगर समेट कर
तो ज़रूरी है अहसास रिश्तों में ।

– शेर सिंह मेरुपा

पगडण्डी

पगडण्डी मेरे गांव की, खण्ड–खण्ड टूटती गई,
बिखरती–बिखरती हो गई सड़क।
जबसे सड़क हुई है पगडण्डी, बदल गई है आदमी सी।
अब नहीं रोकती थके हारे / क्लान्त राही को
कीमती कारों की घुसपैठ से कहारों का आना जाना थम गया है।
अब पगडण्डी सड़क हो गई है, फैल कर सिमट गई है
सड़क होकर भूल गई है पगडण्डी,
सर्वहारा की श्रमसाध्य जिजीविषा की कोख से जन्मी
मेहनतकशों की तकलीफों की हमसाया थी पगडण्डी,
बद्हवास भागते लोगों सी
भागती जाती है अन्जाने नगरों की ओर,
जहां दो बूंद आंसू नहीं गिराता कोई ठहर कर अकेले
पीठ और दिलों के बोझ नहीं बांटता ठहरकर,
हंसता– बतियाता भी नहीं अकेले
ससुराल जाती दुल्हन की गुपचुप रोती पायल की रूनझुन,
बीते युग की बात हो गई है।
लस्टम–पस्टम भागते जड़ों से कटे आदमी सी,
भीड़ में निपट अकेली हो गई है सड़क होती जाती पगडण्डी
सड़कों पे नहीं फैलती पगडण्डी सी मुस्कान,
अन्जाने होंठों पे पहचानी सी होकर,
अक्सर नए रिश्ते पगडंडी जबसे सड़क हुई है,
जाने–पहचाने भी गुज़रने लगे हैं नज़रें बचाकर
हर घर तक पहुंचती पगडण्डी, जबसे सड़क हुई है,
ले गई है बहुत कुछ अपने साथ
परन्तु, फिर भी, नहीं पहुंचने पाई है कभी भी, कहीं
भी, प्रवासी आदमी सी
सड़क होती जाती पगडण्डी।

–उरसेन

इन्तज़ार

क्या खूब है यह इन्तज़ार भी
एक अनजाना सा सकून मिलता है
गुम होता है करार भी
बेचैन होकर खो जाते हैं हम
पलकों में उनका खयाल लिए।
शायद इस तसब्बुर में
पलक खुली तो वो हो सामने
पर जब खुली तो वो क्या
उनका नामोनिशान भी नहीं दूर–दूर तक
हम फिर तन्हा हैं, उनके खयालों के साथ।

कभी लगता है
यह तसब्बुर हमारा उनसे मुलाकात का
रह जाएगा बस एक खयाल ही
पर न जाने क्या बात है,
हकीकत के दरिया पर
उम्मीदों का पुल टूटने पर भी
यूं लगता है
जैसे हर पास से गुज़रने वाला शख्स तुम हो
हर होने वाली आहट तुम्हारे कदमों की है
हर गूंजने वाली आवाज़ तुम्हारे पुकार की है।
हर तरफ की हलचल तुम्हारे मौजूदगी की है।

मुलाकात में मिलने का एहसास सिर्फ एक बार होगा
लेकिन इन्तज़ार का एक एक पल
हर शख्स .....
हर आहट .....
हर आवाज़ .....
हर हलचल के बहाने
तुम्हारे और सिर्फ तुम्हारे
मेरे करीब होने का एहसास दिलाता है।
हां यही शायद वो एहसास है जो
इन्तज़ार को मुलाकात से ज़्यादा खूबसूरत बना देता है।

– अशोक नाग

माँ

पथराई बूढ़ी आंखों ने
फिर निहारी पहाड़ के उस पार
मद्धिम रोशनी वाले मोड़ की ओर
जहां बस की चुंधियाती लाइट
ने उस की कौंध को पुनः जगाया था।
इस बार शायद पोरी मेले पर
आएगा उसका बड़ा अफसर बेटा।
कहा था उसने तीन वर्ष पूर्व
लाऊंगा चश्मा। दांत की जोड़ी
साफ सुनने वाली मशीन,
कमर और टांग मालिश की
विदेशी दवाईयों की बढ़िया शीशियां।
परंतु यदि नहीं आया इस बार भी
तो
इस भय से मां के
झुरझुरे शरीर में उठी एक अजीब सिहरन
अनेक प्रश्नों की सलाखों की ठिठुरन
प्रवेश कर आंगन के आर–पार सहसा
ज़िन्दगी का एक और वर्ष शायद ही
कटेगा सीलन भरे दरके घर की
बाहरी ओवरी में।
मैले कपड़ों की कौंधती बू में
सो पाऊंगी क्या
छः महीने लम्बी बर्फानी
विरान रातों में एकाकी।
चढ़ाई वाले रास्ते में हल के रुकते हुए
नहीं ठहरी थी मां के उम्मीदों की
बस
और पुनः गहरी सांसों के बीच
करती है इक्कठी लकड़ी के
टुकड़े टूटे तन्दूर के खुले मुंह को
भरने के लिए।

– डॉ॰ दयानन्द गौतम

और वह हार गई

– डॉ. दयानंद गौतम

आज धार के उस पार की ऊंची ढलान से एक लम्बी आवाज़ पड़ी.... गांव की वह बूढ़ी नानी नहीं रही। पूरी तलहटी में एक घनघोर सन्नाटा छाया! नानी के नहीं रहने की आवाज़ ने दहला दिया सब को एकाएक! गांव क्या, दूर–पार के हर एक गृह मुखिया ने सोचा तपणी को घर का एक न एक सदस्य जाएगा ही! पर करें क्या? आज होली भी है। पूरे धार के गांवों के रंग जैसे ठहर से गए हों। होली खेलें या नानी के दाह संस्कार में जाएं। खैर होली तो पूरे इलाके में इस सुबह मरने की 'हाक' ने बन्द कर दी थी। नानी के न रहने की सोच और उसके होने की उम्मीद आवां को हमेशा ही काटती रहती थी। कई बार गांव के बच्चों को कहते सुना है, यार नानी कोई नाम है इसका या सम्बोधन। इसे दादी क्यों नहीं कहा। बुजुर्ग कहते हैं – बच्चो! इस के बच्चियां ही हुई हैं, इसने बेटों को नहीं जना। क्यों? भाग्य अपना–अपना, नसीब अपना–अपना।

क्या इसे बचपन में नानी कहना शुरू किया था.....। एक अबोध बालक ने कहा। नहीं भोलू! मीनू था इस का नाम।

मीनू तो घटा कर या सुख लाघव का नाम बना। मीना शान था इसका वास्तविक नाम। माता–पिता की दूसरी सन्तान, बड़ी बहन के बाद और तीन छोटे भाइयों की बड़ी मीनू बहन! स्कूल तब तक गई जब तक छोटे भाई मां की देख–रेख में पलते रहे।

एक भाई बड़ा होने लगा। मां के एक और छोटू हुआ तो पांचवीं पहुंचते–पहुंचते मीनू की पढ़ाई बन्द! अब उसे सभी भाइयों को ढोना है। एक नहीं, दो नहीं, तीन–तीन.....। पर है मीनू सचेत, साफ–सुथड़ी, गुड़िया कठपुतली जैसी। बड़ी बहन घर खलियान, खेत–ढारे डंगर का काम करती तो छोटी बहन 10–11 साल की आयु में भाइयों की मां की तरह देख–भाल करती। सभी कहते, मीनू बहुत सयानी है। सुन्दर भी खासी और शालीन भी। दायित्व के बोझ से दबी मीनू धीरे–धीरे युवावस्था की ओर सरकती तो उसके सौंदर्य की बातें भी होने लगती। बड़ी बहन की शादी के बाद मां की बीमारी और पिता के व्यापार में संलिप्त रहते जैसे एकाएक घर की दादी ही बनी हो मीनू। सुबह से शाम पूरा घर सम्भालना उस का काम था। साफ–सफाई, खाना–पीना, भाइयों को तैयार करना, उन्हें स्कूल भेजना, गाय दूहना, बैलों को सानी–पानी, फसल, घास और घर आए मेहमानों की खातिर जैसे सब विरासत में मिला हो उसे।

मां–बाप के लिए जैसे वरदान बनी मीनू जैसे अपने बारे में न तो सोचती और न कहती। अभाव, बोझ और दायित्व के कोल्हू में पिसती कब ब्याह योग्य भी हो गई मीनू को मालूम न पड़ा। गांव के उस पार से ऊंची धार के निचले गांव से कई रिश्ते आए। कोई उम्र में बड़ा, तो कोई बेरोज़गार। कहीं शारीरिक साम्य नहीं तो कहीं घर की हालत मन्द। इस तरह मीनू के पिता ने न जाने कितने रिश्ते मोड़े।

मां कहती – इसका अपना भाग्य है, जहां इसका दूल्हा होगा, चला आएगा एक दिन बारात लेकर।

एक नहीं, दो नहीं बीसियों रिश्तों को बेकार किया भाग्य ने उसके। एक दिन बड़ी बहन भी रिश्ते भुनाने आई। मेरे पति का वंश यूं ही डूब जाएगा मां। मेरी सहायता करो।

माता–पिता को लगा, अपने देवर की बात कर रही है, पर यह क्या वह तो उसे बहन से हट कर उसे सौत बनाकर ज़हर भरा मीठा रिश्ता जोड़ रही थी। कहा – इन्हें ही दे दो इसे। सभी छोटे भाई सहम से गए थे एकाएक! अलाव में बैठे आग सेंकते सभी के रोंगटे खड़े हो गए थे।

मां ने कहा – पागल हो गई हो क्या? अपने लिए सौत ले जा रही है, पता भी है सौकन की रिस का? बड़ी टस से मस न हुई। जीजा ने भी हामी भरी।

मीनू तो घर का बोझ ढोती, खाना–परोसती, साफ सफाई, बिस्तर बनाती, हाथ पैर धुलाती जैसे खरीदी गई दासी, अपने भाग्य से बेखबर। पिता हुक्का गुड़गुड़ाते जैसे किसी भयानक सपने को देख चुपचाप

बड़ी देर तक अपनी आंख मूंदते खोलते रहे।

खैर यह क्या? मां सरस्वती ने मंथरा पर जैसे अपना जाल बिछाया हो। रिश्ता तय हो गया 23 श्रावण को, 15 दिन बाद....। बहन से सौत का रिश्ता निभाने को कैसे तैयार हुई मीनू? किसी को पता नहीं।

लंगड़ी–लूली होती, कानी–भैंगी होती, मंदबुद्धि, उम्र दराज़ नक्कारी भी होती तो भी क्या उस के लिए एक अदद पति न था इस सारे संसार में जो उसका अपना हो, जिसे वह केवल अपना कहती।

कितना जटिल था जीजा को पति कहना, बनाना और निभाना। क्रूर विधि की कलम, निष्ठुर ब्रहम का लेखा और मीनू के भाग्य की किताब में लिखा एक मनहूस विवाह, काली रस्म की तरह। विदा हुई मीनू..... पिता ने इतना कहा – बेटी मेरी लाज रखना।

तिल–तिल जल कर राख होना, कतरा–कतरा खून निकाल कर जिश रहना, घुट–घुट कर सांस लेना। बांट–बांट कर रिश्ता निभाना, क्या यही पिता की लाज रखने की हिदायत थी। यही तो युगों की त्रासदी है बहू–बेटियां, मां–बहनें अपने कर्त्तव्य मोह में खूंटे से बंधी गायों की तरह मात्र हुंकार भरती हैं। खूंटा उखाड़ना चाहती हुई भी ज़ोर नहीं लगा पातीं। बंधी रहती हैं मूक निष्प्राण प्रस्तर प्रतिमा हो। भावना, ममतामयी सहृदय देहयुक्त नारी न हो कर भाव विहीन प्रस्तर प्रतिमा हो न जाने कैसे निभाई मीनू ने अपनी ज़िंदगी की बेतरतीब कड़ियां? खैर पता चला बेटे की चाह में पांच बेटियां हुई हैं इसकी। यह कैसी चाह है बेटे की? क्या देते हैं बेटे मां–बाप को? जीने की चाह में घुट–घुट कर मरती रही मीनू, आज मर कर ज़िन्दा हुई विधाता की लेख प्रक्रिया को पूरा कर। पर हां, बड़ी के भाग्य में भी एक उछाल आया। 14 वर्षों बाद उसे जुड़वां बेटे हुए। यह कैसी विडंबना है? गौरी को वंश की बेल बना कर लाई थी, उसे मिली पांच बेटियां और निःसंतान बड़ी के यहां दो–दो पुत्र!

देखते ही देखते मीनू के पुराने पति के ढहते घर में सैंकड़ों लोग इकट्ठे हुए। होली के रंग नहीं थे हाथ में किसी के पर हाथ खुले थे अपना सब कुछ लुटाने को सब लोग। काश हम बांट पाते अपना प्रारब्ध दूसरों के साथ सहजता से। लोगों से सुना है पिछले पंद्रह सालों से मीनू पति द्वारा लिखी अपनी वसीयत के खिलाफ लड़ती रही बहन के बच्चों के साथ। ज़मीन के लिए उसने जिद्द पकड़ी, मैं भी पति की ज़मीन की हकदारनी हूं। पति मेरी जवानी, मेरी ज़िन्दगी, मेरी खुशियों का सांझी था। मेरी रवानगी, मेरी पहचान का बराबर का हकदार–और मीनू उसकी जायदाद का हक नहीं रखती!

यह कैसा न्याय है, यह कहां का कानून है यह किसकी लिखी इबारत है? न जाने किस कर्म की सज़ा है। पति के रिश्तों में, सब भावनामय संसार में बराबर का हक और भावना विहीन भौतिक सुखों में उसको खड़ा हाथ दिखाना।

नहा–धुलाकर बूढ़ी मीनू को आंगन में सुन्दर रंगीन कपड़ों में लाया गया। आज वह साढ़े तीन हाथ भूमि की मालकिन थी बस थोड़ी देर लिए। रोने वाले अपने रिश्तों, स्वार्थ और किए गए गलत कामों के लिए रोते हैं। पर जाने वाला प्रसन्न रहता है अपने किए गए अच्छे कामों के लिए।

पांच बेटियां, चार जंवाई। उनके भी बहु–बेटियां यह नज़दीकी रिश्तेदारियां तो बिलख–बिलख कर रो रही थीं परन्तु दूर–दराज़ के लोग मीनू द्वारा किए गए कामों से दबे हुए हैं। वे भी घुट–घुट कर बरबस अपने आंसू न रोक पाते थे। आज तक दूर रहे बहन के बेटे न जाने कैसे एकदम नज़दीक थे उत्तरोतर क्रिया हेतु। पर एक भतीजा कहता, मैं ही करूंगा बुआ की क्रिया। यह क्रिया तो एक रस्म थी पर मीनू ने जो कर्म किए थे वे एक मिसाल थे। बड़ी बहन और अपने दस बच्चों को पालना उसका ही तो कर्त्तव्य था। कम पढ़ी–लिखी मीनू कितनी ज़हीन थी। महिला मण्डल बनाया, लोगों को इकट्ठा किया, उनके अधिकारों के प्रति उन्हें जागृत किया। पंचायत, समिति, ज़िला परिषद के चुनाव में चुनाव लड़ा, जीत–हार के कड़वे फल चखे। गांवों में स्कूल, डिस्पेंसरी, धार तक पी॰डब्लयू॰डी॰ की सड़क पहुंचाना, बड़े कामों के अतिरिक्त कितने ही लोगों को रोज़गार, कितनों को दुख–दर्द में सहायता मीनू का ही तो काम था और इस होली में भले ही मीनू की रंगत चली गई हो परंतु उस द्वारा बिखेरे रंग आने वाले कई वर्षों तक ज़िन्दा रहेंगे।

रूपी रानी की बलि

– स्मिता लोप्पा

यूं तो रूपी रानी के इस घुरे में उस समय पड़े भयंकर अकाल तथा इस अकाल को समाप्त करने हेतु घोर षड़यन्त्र के चलते रूपी रानी का जन साधारण के हितों के लिए दिए गए बलिदान का वर्णन मिलता है, परंतु यह घुरे उस समय की नारी की शोचनीय तथा उपेक्षित अवस्था को भी प्रदर्शित करता है। घुरे में नारी के जीवन के मूल्य को एक काली कुतिया तथा एक काली बिल्ली के जीवन से भी कम आंका गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय नारी का स्तर क्या रहा होगा।

ए घूषे री पाणू डाणा शूकारा गेयी जे।
ए कुला शूकी मूरण शूकी पाणी ना ए टीपू जे।

बात उस समय की है जब लाहुल के घुषाल गांव में रघु राणा का राज था। उस समय एक बार भीषण अकाल पड़ा। इस अकाल के कारण पानी के अभाव के चलते घुषाल की कृषि भूमि सूख गई। गांव के नहर तथा जल के स्रोत सूख गए। कहीं पर पानी की एक बून्द भी दिखाई नहीं दे रही थी। राणा के लिए यह चिन्ता का विषय बना हुआ था कि क्या उपाय किया जाए कि पानी की कमी समाप्त हो जाए।

ए चम्बे आये ऊददु रोउड़ा राणे री प्रौढ़ी जे।
ए चम्बे आये ऊददु रोउड़ा पोथी पातिरी हेरी जे।
ए पातीरी अन्दूरा जे बूरी प्राशणा भूयी जे।
ए पातीरी अन्दूरा जे मानुष बाटा लोड़ी जे।

ऐसे में एक दिन चम्बा से आए हुए एक सिद्ध एवं महात्मा साधु राणा के द्वार पर पधारे। राणा ने अपनी समस्या बताई और उसका उपाय पूछा। साधु ने समस्या के निदान हेतु अपनी पोथी में देखा तो बोले कि यह तो बहुत बुरा प्रश्न निकला है। उन्होंने कहा कि उनकी पत्री यह बताती है कि इस भयानक अकाल को समाप्त करने के लिए एक मात्र उपाय मनुष्य की बलि है।

ए ऊधो मामा टीटू मैटा माना सूबा कीती जे।
ए बाटा लोड़ी बाटा लोड़ी राघु राणे री घारे जे।
ए शेती लाड़ा बाटा देउंले थाचा कूणू पारेला।
ए काड़ी कूती बाटा देउंले प्रौढ़ी कूणू पारेला।
ए काड़ी बिलणी बाटा देउंले चूली कूणू पारेला।
घूंघुरू टीका बाटा देउंले रासी ए कूणू कामेला।
घूंघरू देयी बाटा देउंले चम्बा कूणू ब्यायेला।

साधु के उन वचनों को सुनकर मामा उद्धव तथा मन्त्री टीटू मैटा ने अपनी कुटिल बुद्धि से घोर षड़यन्त्र रचा। उन्होंने राणा से कहा कि समस्या का समाधान मनुष्य की बलि देना बताया गया है। परन्तु यह बलि आपके ही घर से हो, यह अनिवार्य है। यह सुनकर राणा चिन्तित हो उठे कि आखिर बलि दी जाए तो किस की? राणा बोले कि यदि मैं सफेद मेढ़े की बलि देता हूं तो हमारी भेड़ों के झुण्ड की रक्षा कौन करेगा? यदि मैं काली कुतिया की बलि देता हूं तो मेरे घर के मुख्य द्वार की रखवाली कौन करेगा? काली बिल्ली की बलि दूं तो चौके की रखवाली कैसे होगी? पुत्र की बलि दूंगा तो अपना राज काज का कार्य किसे सौंपूंगा? यदि नन्हीं बेटी की बलि

देता हूं तो चम्बा में किसे ब्याहूंगा? ये सभी तो मेरे प्रिय हैं।

उ ऊधो मामा टीटू मैटा माना सूबा कीती जे।
ए ग्राई याना घूषाड़ा कूला फेरूणे जाणा जे।
ए आयो आयो रूपी ए रानी कूला फेरूणे जाणा जे।

इस पर मामा उद्धव और टीटू मैटा ने राणा से कहा कि आप अपनी धर्म पत्नी रूपी रानी की बलि दे दीजिए, वे तो पराए घर से आई हैं तथा आप नई रानी भी ला सकते हैं। राणा भी उन दोनों के षडयन्त्र में फंस गए। अब मुश्किल यह थी कि रानी रूपी को बलि के लिए कैसे ले जाया जाए। टीटू मैटा ने फिर चाल चली व पूरे घोषाल गांव को नहर के पुनर्निर्माण करने के लिए आवाज़ दी तथा साथ ही रूपी रानी को भी शीघ्र चलने को कहा।

ए धीरा धीरा घूषाड़ा बालक चूचू पीन्दा जे।
ए आयो आयो रूपी ए राणी कूला फेरूणे जाणा जे।
ए धीरा धीरा घूषाड़ा बालक रोलूणे लागी जे।

रूपी रानी ने गांव वासियों से अनुरोध किया कि बच्चे अभी स्तनपान कर रहे हैं, रोते बच्चों को चुप कराकर अभी आती हूं, थोड़ी देर ठहर जाओ।

ए रूपी याना राणी जे ठागी कारी लेयी जे।
ए रूपी याना राणी जे बाटा सू देन्दा जे।
ए रूपी याना राणी जे मेणी अरूजाना शूणी जे।

रानी जल्दी से काम निपटा कर आती हैं, घुषाल वासी इस प्रकार छल कर के रानी को बलि के लिए निश्चित स्थान पर ले गए तथा बलि देने लगे।

ए मेणी बाटा देन्दा जे चूचू बारे नीसे राखी जे।
ए मेणी याना बालक आयेला मेणी ए चूचू पीयेला।
ए मेणी याना सीरा जे बारे नीसे राखी जे।
ए मेणी दीवा आयेला मेणी जूंआ हेरेला।

अपने जीवन का अन्त होता देख कर रूपी रानी ने गांव वासियों के सामने अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की। कहा, जब तुम बलि दोगे तो मेरे स्तनों को बाहर रख देना ताकि जब मेरे बच्चों को भूख लगे तो स्तनपान कर सकें, मेरे सिर को भी बाहर रख दिया जाए ताकि मेरी बेटी आकर मेरे सिर में जूंएं देख सके और मेरे बालों को संवार सके। यही अन्तिम इच्छा उसने प्रकट की और उसकी बलि दे दी गई।

कहा जाता है कि रूपी रानी की बलि के बाद घुषाल गांव में अकाल समाप्त हो गया। तब से घोषाल गांव में पानी की कमी नहीं हुई। रानी द्वारा प्रकट अन्तिम इच्छानुसार उसके स्तनों को जहां रखा गया वहां आज दो धवल धाराएं बहती हैं जो कि पहाड़ी पर देखे जा सकते हैं। दोनों धाराओं के मध्य थोड़े से उथले हुए स्थान पर शिलिम नामक घास उगा है जो माना जाता है कि रानी के केश हैं।

रूपी रानी चम्बा से ब्याह कर लाई गयी थीं। इस बलि के बाद राणाओं का चम्बा के साथ सम्बन्ध विच्छेद हो गए। यहां तक कि भेड़ बकरियां चराने वाले गद्दियों ने भी घुषाल के उस नाले का पानी पीना बन्द कर दिया जहां पर रूपी रानी की बलि दी गई थी। ऐसी जनश्रुति लाहुल में प्रचलित है।

(घुरे का स्रोत – 'गीत–अतीत', रिनचेन जंगपो सोसाईटी, केलंग द्वारा प्रकाशित)

वैश्विक प्रतिस्पर्धा के युग में बन्द दरवाज़े की नीति घातक

– बलदेव कृष्ण घरसंगी

आज जब प्रतिस्पर्धा वैश्विक स्तर पर उतर गई है तो कुछ तबकों में प्रतिस्पर्धा को सीमित दायरे में बांधने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रकार आर्थिक आकांक्षाओं को पूर्ण करने हेतु सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सौहार्द पर चोट लगने की पूरी सम्भावना दिखती है। इससे पूरा लाहुली समाज विभिन्न वादियों में सिकुड़ कर रह जाएगा और इस प्रकार कुछ दशकों पहले हुए आपसी भाईचारे व सामांजिक सामंजस्य की नींव उखड़ने के आसार बन जाएंगे। आर्थिक प्रगति के साथ समाज भी उदार सोच को अपनाता है तथा इससे मध्यवर्गीय मूल्यों का ह्रास होने से समाज वृहत्तर दायरे को अपनाने से संकोच नहीं करता।

आज चन्द्रा वादी के लोगों द्वारा बनाया गया चन्द्रा वैली सहकारी सभा का गठन जहां सराहनीय है वहीं जिन उद्देश्यों को लेकर चले हैं उनकी नींव इस गलत धारणा पर टिकाने की कोशिश की गई है कि पटन वादी के लोगों द्वारा हमेशा अन्य वादी के लोगों का शोषण किया गया है। अतः अब इस बिना पर इस सभा द्वारा चन्द्रा वादी के बाहर से आए किसी भी उद्यमी को यहां कार्य करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यह लाहुल वादी के संरक्षणवादी सिद्धांत का पहला व्यापक प्रयोग है। इस प्रकार की विचारधारा से शुरू में कुछ लाभ दिखाई देगा लेकिन ज्यों–ज्यों कार्य में वृद्धि होगी सभा की उन्नति में यही संरक्षणवादी सिद्धांत वाधा बनना शुरू होगी। इसके अतिरिक्त चन्द्रा वादी सहकारी सभा व चन्द्रा वादी के उद्यमियों को अपनी कार्य कुशलता, तकनीक, विजन, और संसाधनों को व्यापक स्तर पर ले जाना होगा न कि बन्द दीवारों में रह कर कार्य करना, अन्यथा सभा व व्यक्तिगत उद्यमी इस विचारधारा की चपेट में आकर भविष्य में अत्यधिक हानि उठाएंगे।

इसके अतिरिक्त लाहुल एवं स्पिति व कुल्लू ज़िलों में इसके विपरीत नतीजे देखने को मिलेंगे। यह विचारधारा दुधारी है क्योंकि अगर आप किसी को काटेंगे तो खुद को भी घाव हो सकता है। राजा घेपन पूरे लाहुल वादी का पूजनीय देव है और उसका संचालन चन्द्रा वादी से होता है, इस संरक्षणवादी सिद्धांत का दुष्प्रभाव किस प्रकार लोक एवं देव संस्कृति पर पड़ेगा, इसका उदाहरण पिछले वर्ष देखने को मिला, जहां राजा घेपन की यात्रा को चन्द्रा वादी तक सीमित रखा गया। इससे आपसी सौहार्द, भाईचारा व सामाजिक सम्बन्धों की डोर कच्ची पड़ जाएगी और इस विचारधारा से मिलने वाला लाभ इससे उपजने वाली हानियों से बहुत कमतर है। मेरे परिवार में ही चन्द्रा वादी से तीन 'दहणियों' को ब्याह कर लाया गया है व एक 'दहणी' को इस वादी में ब्याहा गया है इस विचारधारा का क्या प्रभाव होगा इन सम्बन्धों पर, क्या इसका आकलन हुआ है?

मेरा व्यक्तिगत मत है कि इस तरह की सोच व उद्देश्यों पर चलने से बेहतर है कि इस वादी की संस्थाएं व उद्यमी अपने संसाधन, कार्य क्षमता, कार्य कुशलता व वैश्विक सोच को अपनाकर इन्हें परिष्कृत करें ताकि उन्हें ऐसी कोई विचारधारा अपनाना न पड़े जिससे समाज अस्थिर हो और साथ में अपने लिए भविष्य में विकास के सारे रास्ते अवरुद्ध हो जाएं।

लाहुल आलू सहकारी सभा का वार्षिक अधिवेशन और आप

– बलदेव कृष्ण घरसंगी

क्या आप जानते हैं इस वर्ष सभा की नई कार्यकारिणी चुनी जानी है?

लाहुली समाज, नाम बड़ा और दर्शन छोटा। क्या यह वाक्य हमारे समाज की सही पहचान है? कितने वर्ष बीत गए कितनी कार्यकारिणियां आ गईं, कितने दिग्गजों ने इसकी बागडोर सम्भाली लेकिन सभी हर मोर्चे पर विफल, हार और विफलता तो चलती रहती है लेकिन लड़ाइयां बिना लड़े ही हार जाना, कहां तक जायज़ है। एल. पी.एस. एक संस्था के रूप में अभी भी प्रासंगिक है लेकिन, इसे इसके शेयर धारकों व इसके अपनों ने ही आज इस मोड़ तक ला खड़ा कर दिया है कि यहां से बाहर निकलना दूभर होगा। यह हमेशा से दुधारू गाय ही रही है। कभी इसे राजनेताओं ने दूहने की कोशिश की तो कभी बुद्धिजीवी वर्ग ने इसके सहारे आगे बढ़ने की चेष्टा की तो कभी व्यक्तिगत आकांक्षाएं पूरी वादी पर भारी पड़ीं। इसकी देखभाल करने वाले कारिन्दों ने भी कभी इसे प्यार से नहीं पुचकारा बल्कि इस गाए द्वारा बार–बार 'बङङ्डु' पैदा करने पर इसे अब भविष्य के गर्त में डालने का पूरा बन्दोबस्त कर दिया गया है। शेयर धारक गहरी कुम्भकरणी नींद में सोए हैं। भारी कर्ज़, नकारात्मक सोच और व्यक्तिगत आकांक्षाओं का ढोल भी इन्हें इस नींद से जगा नहीं पा रहा है। कब इसे व्यवस्थित करने राम रूपी प्रबंधक मंडल अवतरित होगा जो इस जरजर हुए वजूद में जान फूंकेगा और अपने कौशल से शेयर धारकों को जागृत करेगा और इस दैत्याकार कर्ज़ में डूबी संस्था को कर्ज़मुक्त करके लाभ की स्थिति में ला पाएगा। यह सब शेयर धारकों की सोच पर है। क्या उन्हें नई दिग्दर्शी कार्यकारिणी चाहिए या फिर पुराने ढर्रे पर चलते रहना है। यह फैंसला आज ही करना है अन्यथा भविष्य में जब इसकी पर्तें खुलेंगी तो आने वाली पीढ़ी उन्हें कोसेगी। इसलिए जागो, शेयर धारको जागो! अब नहीं जगे तो जीवन भर सोते ही रह जाओगे।

फागली अथवा कूं या कुस

– राम नाथ साहनी

दुनियां की हर सभ्यता में त्यौहारों का महत्त्व अति विशिष्ट है। लाहुल घाटी के अन्दर भी कई प्रकार की अलग–अलग सभ्यताएं समय के साथ–साथ पनपती गई और प्रत्येक सभ्यता की अपनी–अपनी पूजा पद्धति के साथ त्यौहरों का भी प्रचलन रहा। इन त्यौहरों में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण त्यौहार फागली का है जिसे स्थानीय भाषा में कूं या कुस कहा जाता है। यह त्यौहार आमतौर पर पट्टन घाटी में ही मनाया जाता है।

पुराने रीति–रिवाज़ के अनुसार फागली को नव वर्ष की संज्ञा दी जाती थी। वैसे भी यह लगभग चीनी पंचांग या तिब्बती पंचांग के नए साल के साथ–साथ ही पड़ता है। पंचांग के बाद प्रथम पूर्णमाशी को खोगला या हाल्ड़ा का त्यौहार पड़ता है जिसे दीवाली या दीपावली की संज्ञा दी जाती है और उसके पश्चात प्रथम अमावस के दिन फागली का त्यौहार पड़ता है। चान्द्र पंचांग के प्रयोग के कारण यह त्यौहार हर वर्ष जूलियन केलेण्डर के हिसाब से एक ही समय या तिथि को नहीं पड़ता बल्कि किसी वर्ष जल्दी और किसी वर्ष विलम्ब से आता है।

वर्तमान समय में जूलियन केलेण्डर के प्रयोग अर्थात अंग्रेज़ी महीनों के प्रचलन के कारण फागली को नव वर्ष का प्रारम्भ मानने की प्रथा लगभग समाप्त हो चुकी है परंतु इस का महत्त्व नव वर्ष के रूप में समझने की प्रथा जारी है। अर्थात फागली के पश्चात वर्ष भर में किसी भी समय पर रिश्तेदार या जान पहचान के लोग पहली बार मिलते हैं। उमर में छोटा आदमी या औरत अपने से बड़े को ढाल कह कर बन्दना करते हैं। इस बन्दना का तरीका भी अपने आप में अनूठा है जिस का वर्णन आगे किया गया है।

लाहुल की पट्टन घाटी के लोगों में फागली का महत्त्व और इसे मनाने के तौर तरीकों को यदि देखा जाए तो जिस प्रकार पश्चिमी दुनियां के लोगों में क्रिसमस का महत्त्व होता है और उसे मनाने के तरीकों से किसी हद तक मिलता जुलता है। जिस प्रकार क्रिसमस में क्रिसमस की पहली शाम अर्थात 24 दिसम्बर की शाम क्रिसमस ईव कहा जाता है सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। इसी शाम को घर के अंदर एक कोने में एक दियार के पेड़, जिसे क्रिसमस ट्री कहा जाता है उसे सजाया जाता है, जैसे कि कोई देवी या देवता घर में पधारा हो। उसी शाम को सारे परिवार, रिश्तेदार इकट्ठे हो कर पार्टी करते हैं और अच्छा खाने पीने का प्रबन्ध करते हैं। उसी प्रकार फागली या कुस की शाम सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। उस शाम को घर के एक कोने में एक बराज़ा बनाया जाता है। बांस के अढ़ाई फुट लम्बी डंडी को खड़ा कर के उस पर शाल लपेट कर उसे इस प्रकार बनाया जाता है जैसे घर के कोने में कोई देवी बैठी हो। उसे फूल आदि से तथा माला आदि पहना कर सजाया जाता है। उसके आगे धूप अगरबत्ती, जलता हुआ दिया और खाने–पीने का सामान, मार्चु तथा लड़दंज़ा आदि पकवान रखा जाता है। विश्वास के तौर पर भी ऐसा माना जाता है कि शिखर अपा अर्थात शिखर की दादी उस दिन घर में पधारती हैं और घर को धन दौलत, सुख शान्ति से भर देती है। उस रात अच्छे से अच्छा खान–पान का प्रबन्ध किया जाता है। दूसरी सुबह अर्थात फागली के दिन घर के मालिक और मालकिन सबेरे पौ फटने से पहले उठ कर पूजा आदि की तैयारी करते हैं। सत्तू का लस्सी या छांग में गूंध कर टोटु और कावाड़ि तैयार करते हैं। जितने अलग–अलग इष्ट देव या देवी को मानते हैं, प्रत्येक के नाम पर उतने ही टोटु तैयार करते हैं और धूप अगरबत्ती या आग में देवदार के फर (पत्ते) को डालकर धुआं करके घर के छत पर ले जाकर देवी देवताओं के नाम प्रस्तुत कर के शगुण करते हैं। कावाड़ि को वहीं कव्वे आदि के लिए

छोड़ देते हैं और टोटु को अन्दर लाकर परिवार में प्रसाद की तरह बांट देते हैं। ऐसा लगता है कि कव्वों को भी जैसे किसी ने बुलावा भेजा हो, अपना हिस्सा लेने के लिए पहले ही तैयार बैठते हैं। तत्पश्चात युगल गाए बैल तथा भेड़ बकरी आदि के पास जाकर वर्ष में एक बार उनका भी धन्यवाद तथा अभिवादन करते हैं।

इतनी देर में परिवार के शेष सदस्य भी उठकर नए–नए कपड़े पहनकर तैयार हो जाते हैं और बारी–बारी से अपने से बड़ों का अभिवादन करते हैं जिसे ढाल या ठेल करना कहते हैं। जौ या गन्दम को अन्धेरे में टोकरियों में उगाकर पीले फूल की तरह के पौधे तैयार किए होते हैं जिसे यौरा कहते हैं। ढालकी करने के लिए पहले दोनों सदस्य अपने हाथ में थोड़ा–थोड़ा यौरा लेते हैं। दोनों अपने हाथ से कुछ हिस्सा लेकर दूसरे के हाथ में थमाते हैं और फिर छोटा सदस्य हाथ जोड़कर बड़े के पैर छूने के लिए झुकता है, और बड़ा सदस्य उसे स्वीकार करते हुए छोटे के पैरों की ओर झुकता है और फिर दोनों हाथ जोड़कर एक दूसरे को प्रणाम करते हैं। इस प्रकार सभी सदस्य एक दूसरे का अभिवादन करते हैं और जितना अच्छे से अच्छा खान–पान का प्रबंध कर सकते हैं, करते हैं। सूखे गेंदे के फूल से बने हुए झोलुणूं या पंढा टोपी पर या कोट पर लगाने को दिया जाता है। इसके पश्चात यह अभिवादन का सिलसिला अपने पड़ोसियों तथा रिश्तेदारों में चलता है। कई गांव में यह हफ्ता भर चलता रहता है।

इस त्यौहार के प्रत्येक दिन का अलग नाम और महत्त्व होता है। जैसे कूंय्हग, कूंसिल, पुनाह्, सिङ्पुन, हंड़पुनाह् इत्यादि। हड़पुनाह् के दिन को खेतों में हल जोतने की संज्ञा दी जाती है। चूंकि इन दिनों खेत तो बर्फ की सफेद चादर से ढके होते हैं इसलिए घर के अन्दर एक थाली में मिट्टी लाकर उसमें बेली के हरे टहनी को काट कर दो टुकड़ों को बैल, एक टुकड़े को योक अथवा जुमा और एक और टुकड़े का हल बना कर थाली की मिटटी में ही हल जोतने की प्रक्रिया पूरी की जाती है। इस प्रकार कई दिनों तक दावतों का सिलसिला जारी रहत्ता है।

फागली पूर्व अर्थात कूंय्हग की रात लोग घर से बाहर नहीं निकलते। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस रात यमदूत घूमते रहते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि इस रात उदयपुर के मृकुला देवी मंदिर के द्वार के दो बड़े–बड़े बुत अथवा द्वारपाल या द्वारबीर दरिया चनाव की सवारी कर के गुरु घंटाल गोम्पा के दो द्वारबीरों को मिलने संगम तक आते हैं।

यमदूतों के बारे में एक कहानी सुनाई जाती है। कहते हैं एक बार रुड़िंग गांव में रुड़िंगबा परिवार के मुख्य और उस की पत्नी प्रातः उजाला होने से पहले ही छत पर रिङक्वल्बि अर्थात पूजा पाठ के लिए निकले थे। पूजा पाठ अभी पूरी नहीं हुई थी कि कहीं दूर जैसे कुछ संगल आदि की आवाज़ सुनाई दी जैसे कि कुछ लोग अपने कमर में या पैरों में संगल बांध कर तेज़ी से शमशान घाट से उनकी ओर आ रहे हों। यह सुनकर मुख्या ने अपनी पत्नी को जल्दी–जल्दी पूजा खत्म कर के घर के अन्दर चलने को कहा। वे अभी दरवाज़े को पार भी नहीं कर पाए थे कि दो अद्भुत शक्ल के आदमी उनके सामने खड़े हो गए। वे समझ गए कि ये यमदूत ही हैं। हिम्मत बांध कर मुख्या ने पूछा कि तुम कौन हो और क्यों आए हो। उन्होंने जबाव दिया कि हम नोरज़िम्बा को लेने आए हैं। नोरज़िम्बा एक बूढ़ी औरत थी जो उसी घर में एक साइड पर छोटे से कमरे अर्थात चुम्ज़ा में रहती थी। उनका उत्तर सुनकर मुख्य की हिम्मत और बढ़ गई और गुस्से में उनको पूछा तो फिर यहां क्यों आए हो। इस पर उन्होंने उत्तर दिया क्षमा करना हम गलत जगह आ गए और यह कह कर वे वहां से एक दम लुप्त हो गए। बाद में उन्होंने देखा कि नोरज़िम्बा अपने कमरे में मरी पड़ी थी।

ब्रंगेस, फोरोग तथा च़म छ्वङ्ज़ि की प्रतीकात्मक महत्ता एवं निहितार्थ

– सतीश कुमार लोप्पा

ब्रंगेस शागुण एवं फोरोग प्रेषण लाहुल के पटन क्षेत्र के बौद्ध समुदाय में प्रचलित विवाह सम्बन्धी ऐसी दो रस्में हैं जिनका कई दशकों पहले परित्याग कर दिया गया था। यहां के नवशिक्षित प्रगतिशील लोगों ने इन रस्मों को व्यर्थ करार देकर और समय का अपव्यय मानकर इन्हें त्याग देना ही उचित समझा। जब कि च़म छ्वङ्ज़ि अभी भी एक जीवित रस्म है।

खेद की बात है कि हमारे प्रगतिशील लोग प्रायः पुरातन रस्मो–रिवाज़ों के बाहरी कलेवर को देखकर ही एक ऊपरी राय बना लेते हैं और उसी के आधार पर एकतरफा अन्तिम निर्णय पर पहुंच जाते हैं। वे उनकी प्रतीकात्मक महत्ता और निहितार्थों को समझने में नाकाम रहते हैं। परिणाम स्वरूप ऐसे फैंसले सामने आते हैं जो सांस्कृतिक दृष्टि से आत्मघाती सांबित होते हैं। आत्मघाती इस अर्थ में कि हम अपनी उदात्त सांस्कृतिक प्रतीकों को खोते जाते हैं और उनके स्थान पर अन्य संस्कृतियों के संदर्भ विलग निरर्थक और भौंडे प्रतीकों को आंखें मूंद कर अपनाते चले जाते हैं। यह प्रक्रिया इस लिए अवश्यम्भावी होती है, क्योंकि जब किसी वस्तु को हटाया जाता है तो उसके स्थान पर एक खला पैदा होती है, उस खला को भरने के लिए किसी दूसरी चीज़ को आवश्यक रूप से आना ही होता है। यह एक प्राकृतिक परिघटना है। यही प्रक्रिया जब व्यापक स्तर पर घटित होती है तो किसी भी समाज के सामने अस्मिता का संकट खड़ा हो जा सकता है। उच्च सांस्कृतिक अस्मिता से ही व्यक्तिगत एवं सामूहिक आत्म–गौरव की भावना पैदा होती है जिसके सहारे ही राष्ट्रीयताएं जीवित रहती हैं। इसलिए पुरातन का त्याग करने से पूर्व उसके हर पहलू को सोच समझ कर भली प्रकार जांच लेना बहुत आवश्यक है। इतना ही नहीं परित्याग की अवस्था में उसके स्थानापन्न के बारें में भी सोच लेना उतना ही ज़रूरी है। अपरीक्षित कार्य सदा हानिकर होते हैं। ब्रंगेस एवं फोरोग का परित्याग भी ऐसे ही कार्य थे। आज इन्हें पुनर्जीवित करने की ज़रूरत है। लेकिन सवाल अब भी बरकरार है कि ''क्यों?'' इस बड़े से क्यों के उत्तर में हमें इन रस्मों के अन्दर छुपी हुई प्रतीकात्मकताओं एवं निहित अर्थों को जांचना और समझना होगा। चलिए, कोशिश करें।

ब्रंगेस ––

बारात कन्या पक्ष के घर जब पहुंच जाती है तो सभी बारातियों को जलपान एवं अल्पाहार कराया जाता है जिसे खंगुल कहते हैं, इसका शाब्दिक अर्थ है भोज। इस भोज से निवृत्त होने के कुछ समय बाद सेहणु के निर्देश पर दुल्हन को बक्ट्रिक्पः के मार्गदर्शन में लिवा लाकर दूल्हे के बाईं ओर बिठा दिया जाता है। एक अन्य महिला भी दुल्हन के साथी के रूप में साथ रहती है। इसे ट्रिल्ड्रि[1] कहते हैं। इस ट्रिल्ड्रि रस्म की परिपुष्टि एवं मंगल कामना हेतु उठि एवं ब्रंगेस का शागुण किया जाता है।(चाहें तो इसे मदिराभिषेक भी कह सकते हैं।) उठि एक पीतल या ताम्बे का संकरे मुंह वाला भण्ड होता है इसमें वर पक्ष द्वारा लाई गई मदिरा/लुगड़ी लबालब भर दी जाती है। पुराने समय में वर पक्ष द्वारा लाए गए भेड़ के धड़ को भी इसी उठि के साथ टेक दे कर खड़ा कर के रख दिया जाता था। इस उठि के पास ही कन्या पक्ष द्वारा सत्तु तथा लुगड़ी को गूंध कर पहले ही बनाकर रखे दो टोटु एक सफेद थोबी के ऊपर रख दिए जाते हैं। इन टोटुओं को ब्रंगेस कहा जाता है। इन में से एक टोटु पांच री माप के सत्तू का त्रिकोणीय तथा दूसरा तीन री माप के सत्तू का रिलमा यानि गोल शंक्वाकार बनाया जाता है। त्रिकोणीय टोटु दुल्हे को तथा गोल शंक्वाकार टोटु दुल्हन का प्रतिनिधित्व करता है।

सेहणु के निर्देश पर बक्ट्रिक्पः अपने तीर से उठि में से मदिरा का शागुण (अभिषेक) करता है तथा सेहणु ब्रंगेस के दोनों टोटुओं का शागुण करता है फिर एक व्यक्ति जिसके माता–पिता दोनों जीवित हों, दोनों टोटुओं को

काट कर एक–एक टुकड़ा दोनों हाथों में लेकर दूल्हा–दुल्हन के सामने कर देता है, कुछ इस प्रकार हाथों को क्रॉस करते हुए कि दायां हाथ दूल्हे की ओर तथा बायां हाथ दुल्हन की ओर रहे। वह उन्हें ब्रंगेस के टुकड़े तुरंत झपट लेने को कहता है। इस प्रकार दूल्हा–दुल्हन में ब्रंगेस झपटने की प्रतियोगिता कराई जाती है। यह माना जाता है कि जो पहले झपट लेगा उसका अपने जीवन साथी पर आजीवन वर्चस्व बना रहेगा। इस प्रतियोगिता के बाद ब्रंगेस के छोटे–छोटे टुकड़े कर के विवाह में सम्मिलित सभी लोगों में प्रसाद स्वरूप बांट दिया जाता है।

ब्रंगेस की यह छोटी सी प्रतियोगिता दूल्हा और दुल्हन का पूरे समाज के सामने एक दूसरे के साथ परिचय कराने तथा उनके आन्तरिक संकोच को किंचित दूर करने का बड़ा सुन्दर और अनूठा तरीका था। इतना ही नहीं ब्रंगेस अर्पण के पीछे और भी गम्भीर गुरुतर निहितार्थ हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है त्रिकोणीय टोटु दूल्हे को तथा गोल शंक्वाकार टोटु दुल्हन को प्रतीतिक करते हैं। इन की विशिष्ट आकृतियों में इन के अर्थ छुपे हैं। इनके गहन प्रतीकात्मक अर्थ हैं। यहां टोटु का गोल शंक्वाकार लिंग का प्रतीक है तथा त्रिकोणाकार योनि का प्रतीक है। (ध्यान रहे, हम शिवलिंग की बात नहीं कर रहे हैं) लेकिन अभी ऊपर हम कह आए हैं कि गोल शंक्वाकार टोटु दुल्हन को तथा त्रिकोणीय टोटु दूल्हे को प्रतीकित करता है, तो दोनों बातों में एक विरोधाभास दिखाई देता है। इस का कारण यह है कि पुरातन लाहुली मनीषा ने प्रतीकों का चयन एवं निरूपण बड़ी चतुराई के साथ किया है, इसमें कोई संदेह नहीं। वास्तव में पुरुष में नारी तत्व का तथा नारी में पुरुष तत्व का अभाव प्रकृति प्रदत्त है, यह सर्वविदित एवं सार्वभौम है। हमारे मनस्वी बुजुर्गों ने जिस में जिस तत्व का अभाव है उसमें उसी तत्व को प्रत्यारोपित कर प्रतीकों का स्थापन एवं निरूपण किया। इस प्रकार दोनों अपूर्णों को प्रतीकात्मक पूर्णता प्रदान करने की सफल चेष्टा की गई। इसी लिए दूल्हे का प्रतीक टोटु त्रिकोणीय तथा दुल्हन का प्रतीक टोटु गोल शंक्वाकार बनाए जाते हैं।

अब इन टोटुओं को प्रतीक बनाकर ब्रंगेस के दान द्वारा कन्या के माता–पिता अत्यन्त शालीनता के साथ बिना किसी व्यक्त शारीरिक चेष्टा के अपनी कन्या वर को न केवल सौंप देते हैं अपितु वर द्वारा उस का वरण भी करवा देते हैं। सार्वजनिक तौर पर परस्पर स्पर्शादि शारीरिक चेष्टाओं को यहां छिछोरापन समझा जाता है। प्रत्यक्षतः कुछ कहा नहीं जाता सुना नहीं जाता, चुपचाप सब कुछ प्रतीकात्मक रूप से सम्पन्न होता है। हिन्दू रीति में पाणि–ग्रहण का जो अर्थ है वही अर्थ लाहुल के संदर्भ में ब्रंगेस का है। ब्रंगेस की यही प्रक्रिया वर पक्ष के यहां भी बारात के लौटने पर दोहराई जाती है। वे भी ठीक उसी प्रकार अपना पुत्र कन्या को सौंप देते हैं और कन्या द्वारा उस का भी वरण करवाते हैं। जब दूल्हा–दुल्हन ब्रंगेस के टुकड़े झपट कर प्रसाद स्वरूप ग्रहण करते हैं तो यह उन का परस्पर अंगीकरण ही नहीं अपितु परस्पर मनसा–वाचा–कर्मणा सम्पूर्ण समर्पण का भी प्रतीक है। ब्रंगेस के टुकड़े करके सभी लोगों में बांटने का अर्थ मात्र उदरपूर्ति नहीं है। इसका अर्थ है कि वे सब भी इस प्रतीकात्मक समर्पण को स्वीकृति प्रदान करते हैं और इसके साक्षी बनते हैं।

ऐसे मौलिक देशज प्रतीक, उनकी चमत्कृत कर देने वाली प्रतीकात्मकता, अर्थ की गहराई, भाव पक्ष की उच्चता, उनकी सहज सरलता, क्या ऐसी रस्में त्याज्य हो सकती हैं? कदापि नहीं। ऐसी रस्में अपनी महत्ता स्वयम् सिद्ध करती हैं।

फोरोग प्रेषण ––

फोरोग अथवा काग प्रेषण विवाह की एक और महत्त्वपूर्ण रस्म है जो गहन अर्थ लिए है। ब्रंगेस के शागुण के बाद भेड़ के धड़ के टुकड़ों को एक विशेष रीति से बंटवारा कर कन्या पक्ष के रिश्तेदारों में बांट दिया जाता है। तदन्तर फोरोग प्रेषण की प्रक्रिया आरंभ कर दी जाती है। इस में परात के अन्दर रखे चौरस दू अर्थात पानी में पकाए गए सत्तू की लेई के चारों कोनों और मध्य में देवदार की लकड़ी के छह–सात इंच लम्बे–पतले पतले टुकड़ों पर दू

से बने पांच फोरोग यानि काग स्थापित किए जाते हैं। ये काग चारों दिशाओं की ओर अभिमुख रखे जाते हैं। जब कि मध्य वाले काग का मुख पूर्व की ओर रहता है। अनेक प्रकार की भोज्य वस्तुएं भी परात में रखी जाती हैं। भोट भाषा में विरचित एक विशेष गीत गाया जाता है। इस गीत के माध्यम से प्रत्येक काग को उसके निर्धारित दिशा की ओर भेजा जाता है। वह यहां का संवाद उस दिशा के लोक–लोकेतर में प्रसारित करता है और वहां का संवाद लेकर वापिस लौट आता है। संवाद सुना लेने के बाद उसे अपनी दिशा में पुनः उड़ा दिया जाता है।

फोरोग प्रेषण का जो पूरा परिदृश्य है, उसमें कई बातें हैं जो स्पष्ट दिखाई देती हैं। इसमें पांचों दिशाओं पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा उर्ध्व के कागों का आह्वान कर के उन्हें परात में सजे दू से निर्मित दृष्य–भूमंडल के मिनिएचर मंडल में उनकी–अपनी अपनी निर्धारित दिशा में स्थापित किया जाता है। फिर उन्हें एक–एक कर अपने–अपने दिशा क्षेत्र में संवाद लाने तथा ले जाने के लिए भेजा जाता है। काग लौट कर बताता है कि अमुक दिशा का राजा कुशल–मंगल है, अपने नियत स्थान पर स्थिर एवं अधिष्ठित हैं। यहां राजा शब्द अलौकिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऐसा मेरा मानना है। किसी भी दिशा का स्वामी उस उस दिशा विशेष का ध्यानी बुद्ध है उसी को राजा कह कर सम्बोधित किया गया है। ऐसा मानने के दो आधार हैं एक तो यह शब्द ध्यानी बुद्ध से पहले आया है। कोई भी लौकिक राजा बुद्ध से श्रेष्ठ नहीं हो सकता। दूसरा राजा को अपने नियत स्थान पर अधिष्ठित बताने के तुरन्त बाद, बिना किसी अन्य संदर्भ के ध्यानी बुद्ध को यथा स्वाधिष्ठित बताया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों शब्द समतुल्य प्रयुक्त हुए हैं। जब कि लौकिक प्रजा की खैर खबर बाद में ली गई है। लेकिन यदि कोई राजा शब्द को लौकिक राजा के अर्थ में भी लेना चाहे तो उसके लिए वह स्वतन्त्र है। चाहें तो दोनों अर्थों में भी ले सकते हैं। काव्यार्थ को लघुतर सीमाओं में बांधना संभव नहीं।

यहां यह स्पष्ट कर देना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि बौद्ध धर्म की वज्रयान परम्परा में पांच ध्यानी बुद्धों की परिकल्पना की गई है, जो पांच दिशाओं के स्वामी माने जाते हैं। पूर्व को वज्रसत्व, पश्चिम को अमिताभ, उत्तर को अमोघसिद्ध, दक्षिण को रत्नसंभव तथा उर्ध्व को वैरोचन का बुद्ध क्षेत्र माना गया है।

इस रस्म में निहित सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि काग के माध्यम से इस मर्त्यलोक से उच्चतर एवं श्रेष्ठतर बुद्ध क्षेत्रों तक सम्वाद लाया और ले जाया जाता है। स्पष्ट है कि होने वाले विवाह की उद्घोषणा ईह लोक के साथ साथ लोकेतर तक पहुंचाई जा रही है, वह भी प्रत्येक बुद्ध को अलग से सम्बोधित करते हुए। उनको बताया जा रहा है कि हम अमुक कन्या और अमुक वर को विवाह बन्धन में बांधने जा रहे हैं। आप अपने स्थान पर अनन्त काल तक इसी प्रकार यथास्थित एवं अधिष्ठित रहने वाले हैं। हम यह जो विवाह करवाने जा रहे हैं, उसका आप सब पांचों ध्यानी बुद्ध साक्षी रहें और हमारे बच्चों को आशीष प्रदान करें। यही उपक्रम पहले कन्यापक्ष करता है बाद में वर पक्ष। यह ठीक ऐसी ही बात है जैसी कि हिन्दू रीति में अग्नि को साक्षी मानकर फेरे लेना। अर्थात लोकेतर या देवीय साक्षी का स्थापन। यहां अग्नि के स्थान पर पांच ध्यानी बुद्धों को साक्षी बनाकर विवाह के रस्म पूरे किए जाते हैं और उनके आशीष के रूप में प्रसाद ग्रहण किया जाता है। फोरोग प्रेषण की यही मूल भावना है।

इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि लाहुल के पटनी लोग विवाह में सूक्ष्म मुहूर्तादि का विचार नहीं करते। कोई सौम्य वार देख लिया, शुक्ल पक्ष देख लिया, हो गया विवाह का दिन तय। इस स्थूलता का तोड़ भी इस फोरोग प्रेषण में परिलक्षित होता है। फोरोग प्रेषण गीत के माध्यम से वे एक ऐसे परिवेश का निर्माण करते हैं जिसमें हर तरफ सुख शान्ति और मंगल ही मंगल है। लोग–बाग सद्कर्मों में प्रणत हैं, लोक हो या लोकेतर सब जगह स्थिरता है, शान्ति है, मंगलमयता है। जब सारा परिवेश ऐसा मंगलमय हो तो ऐसे में गृहस्थ द्वारा किए जाने वाले किसी भी अनुष्ठान का कल्याणकारी होना अवश्यम्भावी है। विवाह के मंगलमय एवं सुफलदायी होने की भावना एवं कामना इस रस्म में स्पष्ट देखी जा सकती है।

लोग अक्सर प्रश्न खड़े करते हैं कि विवाह में कौए उड़ाने का क्या मतलब? कौआ नहीं "काग"! काग लोक एवं लोकेतर में सम्पर्क सूत्र है। "कौए" उड़ाने का यही मतलब है।

च़म छ्वड़्ज़ि ––

च़म छ्वड़्ज़ि का अर्थ है ऊन को सुलझाना। इसमें पहले शागुण किया जाता है और फिर उपस्थित सभी पहुंचाने आई महिलाओं को थोड़ा–थोड़ा ऊन दिया जाता है जिसे वे हाथों से सुलझा कर कातने योग्य बनाती हैं। यह रस्म लाहुल की महिलाओं की कर्मठ कार्य संस्कृति की ओर इंगित करती है। यहां की महिलाओं की कार्य संस्कृति अत्यन्त उच्च कोटि की है। कोई भी परिस्थिति हो, कोई भी अवसर हो, चाहे वह विवाह का जश्न ही क्यों न हो, वह अपने आप को कार्यशील रखती है। घर में हो, खेत–खलिहान में हो या फिर किसी दावत में हो उनके हाथ कभी नहीं रुकते। कन्या पक्ष की महिलाएं अपनी इसी कार्य संस्कृति का परिचय उक्त ऊन सुलझाने के माध्यम से देती हैं। इस प्रकार दुल्हन के लिए यह संदेश और प्रेरणा है कि वह अपने मायके की इस कार्य संस्कृति को ससुराल में अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कल या परसों नहीं, बस आज ही से तत्पर हो जाए। दूसरी ओर वर पक्ष की महिलाएं सुलझाने के लिए ऊन पेश करके यह अन्दाज़ा लगाने की कोशिश करती हैं कि कन्या पक्ष की कार्य संस्कृति कितनी उच्च या निम्न है और सब से बढ़कर तो यह कि नववधू कितनी कार्य कुशल एवं सुघड़ है। इस प्रकार च़म छ्वड़्ज़ि दोनों पक्ष की महिलाओं द्वारा एक दूसरे की थाह लेने की रस्म भी है।

आजकल यह रस्म मात्र प्रतीकात्मक रह गया है। थोड़ी थोड़ी मात्रा में ऊन देकर यह औपचारिकता पूरी कर ली जाती है। मेरा अनुमान है कि पुराने समय में सचमुच ही काफी सारा ऊन सुलझवा लिया जाता होगा। इस श्रम के एवज़ में उन महिलाओं को घी के साथ सत्तू–छाछ का मिश्रण 'पिण्णि' परोसा जाता था। आजकल घी के साथ भटूरे परोसे जाते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण के बाद हम निःसंकोच इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि ये रस्में आज पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हैं और इन्हें पुनर्जीवित किया ही जाना चाहिए।

(पाद संकेत –1 आज कल ट्रिल्ड्रि की रस्म को विदाई के समय मात्र चन्द मिनटों तक सीमित कर लिया गया है।)

बातचीत में स्थानीय बोली और हिन्दी का कश्मकश

पति पत्नी से – कः आउंर ग्यातने? **पत्नी पति से** – दे ए देर तचे। **पति बच्चे से** – अभिषेक! ऐसा नहीं करते बेटे। **बच्चा** – डेडी मुझे नीचे जाना **है। पत्नी बच्चे से** –नहीं जाना! अच्छा नहीं है। **पत्नी पति से** –दि कटु सोठेक्तुरङ ए! **पति पत्नि से** –छेरी, चि शुचा? **बच्चा मां से** – मम्मी, मुझे चाकलेट चाहिए। **मां बच्चे से** –नहीं! चाकलेट नहीं खाना। वह देखो ..... (दूसरे बच्चे की तरफ इशारा करते हुए!).....वह चाकलेट नहीं मांगता। अच्छा बच्चा। **बच्चा** – नहीं ई ..... मुझे चाकलेट खाना है। **पत्नी पति से** –से खम के हन्दो दि कटुई दसङ। (फिर बच्चे की तरफ मुखातिब होते हुए) .....देख मासी को बोलूंगी, अभिषेक अच्छा बच्चा नहीं है। **पति पत्नी से** – बङज़ि रोऊं! केई ग्याफि लसी, दीई द रेड्रि ए म। **बच्चा** –(ज़ोर से रोते हुए!) चाकलेट चाहिए हे ..... चाकलेट चाहिए, चाकलेट चाहिए।

अब इस मिक्स फ्रूट स्थानीय बोली और हिन्दी संवाद का क्या किया जाए। इस अपभ्रंश का ज़िम्मेदार कौन? नव धनाढ्यता या फिर बुरजुआ डिकेडेन्स जहां अपने ही बच्चों को अपनी स्थानीय भाषा से वंचित कर हम क्या पाना चाहते हैं। यह वर्तमान फैशन बन गया हैं कि अपने ही बच्चों को हम अपनी भाषा बोलने और सीखने का अवसर नहीं दे रहे। यही चलन सिर्फ लाहुलियों में ही नहीं अपितु यह बीमारी पूरी पहाड़ी पट्टी को लील चुकी है। शायद तीव्र संचार व्यवस्था, वैश्विक गांव की परिकल्पना की वजह से स्थानीय बोलियां अब अपना अर्थ खोती जा रही हैं। अब इसे सिर्फ दूसरी भाषा के लोगों से बात छिपाने के लिए प्रयोग किया जाता है। अब इसका प्रयोग संस्कृत की तरह स्कूलों या फिर घरों का ऍप्शनल सब्जैक्ट के रूप में ही होगा।

– घरसंगी

तिब्बत में ढाई वर्ष – एक संस्मरण

(प्रथम किस्त)

– के0 अंगरूप लाहुली

यह बात मार्च 1957 की है, जब मैं भोट साहित्य के उच्च अध्ययन के लिए तिब्बत के चङ प्रान्त की राजधानी जिकाचे पहुंचा। इससे पूर्व मैं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में तिब्बती भाषा के अध्यापन का कार्य करता था। जिकाचे समुद्र की सतह से 12 हज़ार फीट की ऊंचाई पर स्थित है। हिमालय के उस पार की यह प्राचीन नगरी अपनी अमूल्य संस्कृति को लिए खड़ी थी। नगर की पूर्वी ढलान पर ल्ह–सा सरकार की भव्य अट्टालिका 'ज़ोङ' विद्यमान था और पार्श्व भाग में झण्डे पताकाओं से सज्जित जगत प्रसिद्ध टशी ल्हुन–पो महा विहार स्थित था। यह महामान्य पणछेन लामा का विहार है। इसे प्रथम दलाई लामा गे–दुन–डुब ने 1447 ई. में स्थापित किया था। प्रान्त की राजधानी और भिक्षुओं की शिक्षा–दीक्षा का मुख्य केन्द्र होने के नाते पणछेन लामा की आध्यात्मिक पीढियां भी यहीं पर निवास करती आयी हैं। इस विहार से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर पणछेन लामा का ग्रीष्मकालीन निवास स्थान दे–छेन–फो–डङ नामक एक भव्य आवास निर्मित है। अभी कुछ समय पहले परिनिवृत्त दसवें पणछेन एर्तेनी ने ग्रीष्म आवास के परिसर में ही अपने अधिकारियों को राजकाज के प्रशिक्षण देने के लिए एक केन्द्र की स्थापना की हुई थी। उसी केन्द्र में सौभाग्यवश मुझे भी प्रवेश मिल गया था। ऐसा लद्दाख के प्रमुख लामा कुशोक बकुला जी की सशक्त संस्तुति के कारण सम्भव हुआ था। उस समय बकुला जी कश्मीर सरकार के मंत्री मंडल में लद्दाख मामलों के मंत्री थे। इसका कोई राजनीतिक या कूटनीतिक आशय या उद्देश्य नहीं था। वास्तव में बकुला जी और पणछेन एर्तेनी के शिक्षक ङुल–छु–रिन–पो–छे, डस–पुङ महाविहार के छात्र जीवन में सहपाठी थे। दोनों ने एक ही साथ ल्ह–श्म–पा की परीक्षा दी थी और दोनों उत्तीर्ण भी हुए थे। इसी मित्रता के नाते बकुला जी ने मेरे केन्द्र में प्रवेश की संस्तुति सीधे विद्यालय से न करके ङुल–छु–रिन–पो–छे को पत्र लिखा था। इस प्रकार मेरा प्रवेश सम्भव हुआ। चूंकि मैं भारत वर्ष में एक राज्य सरकार के मंत्री का नाम लेकर तिब्बत पहुंचा था, इस कारण चीनी अधिकारी मुझे भारत का भेदिया समझते थे। यदि मैं उनके चंगुल में आता तो मेरे नाक–कान अवश्य ही काट दिए जाते, ऐसी पूर्व चेतावनी भी मुझे मिल चुकी थी। चीनी 1950 में ही तिब्बत पहुंच गए थे और धीरे धीरे उस देश के ऊपर अपना पंजा मज़बूत करते जा रहे थे।

प्रशिक्षण केन्द्र जो चे–लोब–डा (रॉयल स्कूल) कहलाता था, 10/12 कनाल भूमि को चार दीवारी से आवृत्त कर एक शैक्षणिक परिसर बनाया गया था, जिस में शिक्षार्थी और प्रशिक्षकों के लिए आवास की भी व्यवस्था थी। इस केन्द्र में नियमित रूप से रहने वाले लगभग दो सौ छात्र–अध्यापक थे और उन्हें सभी सुविधाएं प्राप्त थी। शिक्षार्थियों को राष्ट्र संचालन की सभी प्रकार विधि एवं राज–काज की शिक्षा दी जाती थी। परंतु भाषा और साहित्य आदि दो चार विषयों के शिक्षकों को छोड़कर शेष प्रशिक्षक स्वयं पूर्ण रूप से प्रशिक्षित नहीं होते थे। सर्वांगपूर्ण प्रशिक्षक उपलब्ध भी नहीं थे। फलतः केन्द्र के लक्ष्य के अनुसार परिणाम जल्द सामने नहीं आता था। प्रशिक्षुओं के सदाचार पर बड़ा बल दिया जाता था। इसके लिए केन्द्र में साप्ताहिक धार्मिक व्याख्यान का आयोजन होता था। इसके लिए टशी–ल्हुन–पो महा विहार से किसी विद्वान गे–शे को आमंत्रित किया जाता था। कभी कभार पणछेन लामा जी स्वयं भी इस धार्मिक कक्षा में व्याख्यान देते थे। एक बार इसी व्याख्यान के सिलसिले में उन्होंने कहा था कि हमारे समाज में कुछ सिर फिरे लोग मेरे ऊपर साम्यवादी होने का लांछन लगाते हैं। मैंने त्रिशरण ग्रहण किया है अतः यदि कोई मुझसे कहे कि बौद्ध धर्म को त्याग दो अन्यथा तुम्हें गोली से उड़ा दिया जाएगा, तो मुझे गोली के सामने अपना ललाट

उपस्थित करने में तनिक भी हिचक नहीं है। मैं त्रिशरण कभी भी त्याग नहीं सकता। ऐसा कहते उनके मुख मंडल पर एक अद्‌भुत तेज झलक रहा था। यद्यपि उस समय पणछेन लामा जी की अवस्था मात्र 18/19 वर्ष की रही होगी परंतु वे एक पूर्ण परिपक्व व्यक्ति लगते थे। केन्द्र को चीनी सरकार से अनुदान प्राप्त होता था अतः पाठ्यक्रम में एकाध चीनी (साम्यवादी) शिक्षा पद्धति का भी समावेश किया गया था। इस पद्धति के अंतर्गत प्रतिदिन की ब्रेन वाशिङ सभा मुख्य थी। उस सभा में शिक्षार्थियों से उस दिन या अन्य किसी दिन अथवा जीवन में कभी भी की गई साम्यवादी आचार संहिता विषयक गलतियों को उनके अपने मुंह बुलवाते थे और उन गलतियों के लिए उनको कोई शारीरिक यातना मिलती थी। उदाहरण के तौर पर वक्ता ने बचपन में या कभी अपनी मां या शिक्षक आदि की बातों की अवहेलना की हो, पढ़ाई के समय खेला हो, या खेल की नियत अवधि में सुस्ती दिखाई हो तो ये सभी बातें साम्यवादी चरित्र निर्माण की दृष्टि से हेय मानी जाती हैं, इस प्रकार की प्रवृत्ति अब भी प्रशिक्षु के मनःस्थल पर सुप्त अवस्था में विद्यमान हो सकता है और कभी भी प्रस्फुटित होकर राष्ट्र द्रोही जैसा कार्य कर सकता है। अतः उसके निराकरण हेतु दण्ड दिया जाता था। यहां तक कि कभी कभार तो बाप दादाओं की गलतियों को भी शिक्षार्थियों से उगलवा कर बपौती के रूप में उन्हें यातना दी जाती थी। उनका प्रधान लक्ष्य किसी भी प्रकार युवकों के मन में साम्यवादी व्यवस्था की शक्ति का भय तथा उस व्यवस्था के प्रति लगाव पैदा करना होता था। उनका तरीका भी अच्छा नहीं था। मुझे यह प्रयास बहुत भद्‌दा और अप्रिय लगता था।

केन्द्र में विशुद्ध चीनी नस्ल का प्रशिक्षक तो ट्रांग शेन नाम का एक ही व्यक्ति था। एक अन्य प्रशिक्षक भी था जो चीनी तौर तरीकों को अपनाए हुए था। उसका नाम दोरजे था और वह अम्दो वासी था। यह सही है कि दोनों प्रशिक्षक मुझ से बड़ा स्नेह रखते थे। सैनिक अभ्यास के समय जब पंक्तिबद्ध होकर दौड़ना पड़ता था तो ऑक्सीजन के अभाव में मुझे एक दम थकावट महसूस होती थी। मैं कड़े नियमों के बावजूद पंक्ति से अपने आप को बाहर निकाल जाता था। इस पर चीनी शिक्षक मुझसे रोष प्रकट नहीं करते थे बल्कि मेरी दयनीय अवस्था को देखकर मुस्कुराने लगते थे और मुझे वहीं पर छोड़कर पंक्ति को आगे बढ़ाते चले जाते थे। इन दो प्रशिक्षकों के अतिरिक्त तीसरा व्यक्ति एक अम्दो निवासी छात्र था। वह भी चीनी रंगढंग की पोशाक पहनता था और चीनी भाषा में ही अधिकतर बातें करता था। परंतु वह बड़ा भोला भाला सा था। एक दिन उसने तोतली भोट भाषा में मुझसे कहा कि आप तो वज्रासन (बोधगया) से भी कहीं सुदूर प्रदेश से आए हैं। हमें यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है। हमारी मां मुझे बपचन में वाराणसी और वज्रासन की कहानी सुनाया करती थी। वह कहती थी कि इन स्थानों में भगवान शाक्यमुनि बुद्ध और भिक्षु संघ निवास करते हैं। उस समय मैं वज्रासन को स्वर्ग में स्थित कोई देवस्थान समझता था। आप स्वयं वज्रासन का साक्षात करके आए हैं, यह मुझे सहसा विश्वास नहीं होता।

1959 में चीनी सेनाओं ने जब ल्ह–सा पर बर्बरतापूर्ण आक्रमण कर दिया तो दलाई लामा जी उन आक्रमणकारियों के चंगुल से बचकर भारत वर्ष चले आए थे। उन्हीं दिनों पणछेन लामा जी सदा की भांति टशी–ल्हुन–पो महाविहार में चे–फो–डङ में निवास कर रहे थे। हमारे प्रशिक्षण केन्द्र में जब ल्ह–सा पतन की खबर पहुंची तो कुछ चीन परस्त अनाड़ी ट्रेनी खुशी में उछल पड़े। ऐसा लगता था कि उन अबोध लोगों को अपने राष्ट्र के अस्तित्व समाप्त होने की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। वास्तव में वे उस दुःखद घटना के परिणामों को समझने में असमर्थ थे। बल्कि वे अब भी ल्ह–सा के अभिजात वर्ग को साम्यवादी भाषा तथा मुहावरों में गालियां बक रहे थे। इस उन्माद पूर्ण रवैये की खबर जब पणछेन लामा जी के मुख्य सलाहकार सोल–जे–ता–ला–मा के कानों पहुंची तो वे क्षुब्ध होकर तुरन्त केन्द्र में पहुंचे और उन शिक्षार्थियों को सावधान करते हुए समझाने लगे कि दे–प–जुङ (भोट सरकार) के पतन का अर्थ संपूर्ण तिब्बत का अस्तित्व मिट जाना है। यह समय खुशी मनाने का नहीं अपितु रोने का है। सावधान, यदि किसी ने इस तरह की और हरंकत की तो। ऐसा मत समझो कि ल्ह–सा के कु–टग (अभिजात) वर्ग से छीना हुआ अधिकार तुम लोगों को मिल जाएगा। ऐसी मूर्खता की बात कभी नहीं सोचना।

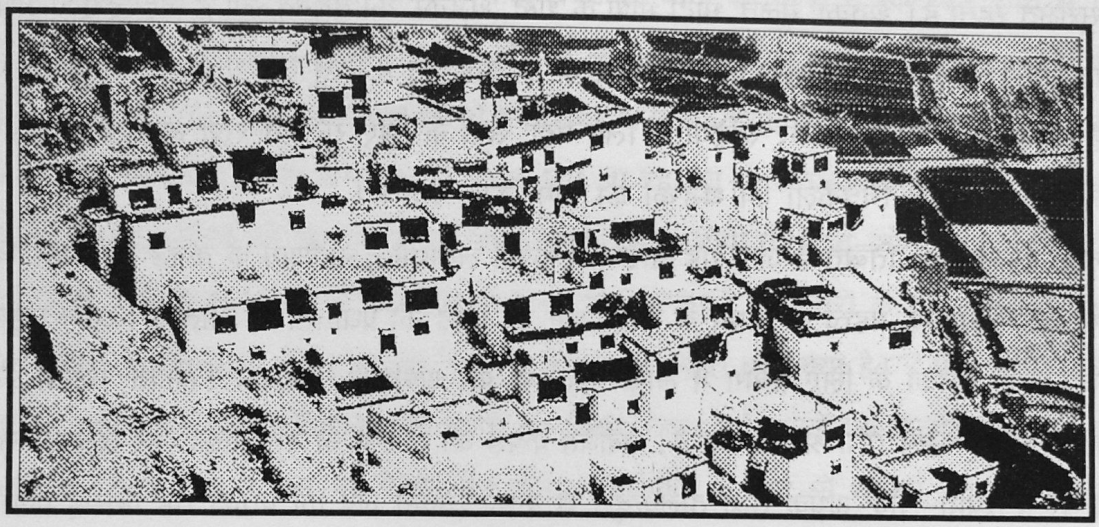

उस समय दुनियां भर के रेडियो स्टेशनों से तिब्बत में घटित घटनाओं की खबर ज़ोर–शोर से आ रही थी। सभी समाचारों का मुख्य स्रोत पेइचिंग रेडियो ही था। ल्ह–सा का सशस्त्र विद्रोह तथा दलाई लामा के पलायन और पणछेन लामा के भोट देश के राष्ट्राध्यक्ष के रूप में नियुक्ति का समाचार बारम्बार प्रसारित किया जा रहा था। उस समय अधिकारियों ने मुझे टशी–ल्हुन–पो विहार, जहां पणछेन लामा जी के धार्मिक मामले का कार्यालय होता था, वहां पर बुला कर कहने लगे कि तिब्बत के विषय में विशेष कर वर्तमान संकट के संदर्भ में दुनियां के किसी भी कोने से और किसी भी भाषा में प्रसारित समाचार और टिप्पणियां जो तुम समझ सकते हो, उसका भोट अनुवाद तुरंत कार्यालय को प्रस्तुत किया करो। उसके पश्चात मैं वही करता रहा। मुझे एक ट्रांज़िस्टर रेडियो सौंपा गया। हिमालय के उस पार उस समय वही एक मात्र दूर संचार व्यवस्था थी। आम दिनों में पणछेन लामा जी मुझे देखते ही हल्का सा मुस्कुरा लेते थे। उस समय जहां मुझे रेडियो के साथ बिठाया गया था, उस के सीधे सामने पणछेन लामा जी के चहलकदमी करने का बरामदा था। वे वहां पर धीरे–धीरे अति गंभीर मुद्रा में घूमते थे परंतु मेरी ओर कभी देखते नहीं थे। मैं भी चुपचाप अपनी ड्यूटी पूरा करता रहता था। सामान्य दिनों में जब कभी भी पणछेन लामा जी के दर्शन का मौका मिलता, मैं दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता और मुंह से भी नमस्ते जी कह देता। मेरा रोज़–रोज़ का 'नमस्ते' शब्द पणछेन लामा जी के अधिकारी वर्ग को जो सदा उनके साथ रहते थे इतना कर्णप्रिय लगा कि उन्होंने मेरा नाम ही नमस्तेकरण कर दिए और वे मुझे 'नमस्ती' कह कर पुकारते थे।

(नोटः– इस संस्मरण की द्वितीय किश्त फिलहाल प्राप्य नहीं है)

जनजातीय क्षेत्र की अमूल्य कला–निधि थनका

– मौलू राम ठाकुर

थनका बौद्ध–धर्म अनुयायियों की एक महान धार्मिक और आनुष्ठानिक चित्रकला और शिल्प है जो अपनी सुन्दरता और विशिष्टता के कारण विश्व भर में प्रसिद्ध है। लाहुल, स्पीति, किन्नौर, लद्दाख आदि जनजातीय क्षेत्रों के गोन्पाओं और कुछ शिष्ट घरों में यह अमूल्य निधि सुरक्षित है तथा इन क्षेत्रों के कुछ महान कलाकार इस कला को बड़ी श्रद्धा, आस्था और भक्ति के साथ निष्पादित कर रहे हैं। थनका वस्तुतः चित्रकला, अभिलेख तथा धर्माचरण का संगम स्थल है, त्रिवेणी है। मूल रूप में यह चित्रकला है जिसके द्वारा शाक्यमुनि, बोधिसत्त्व, पद्मसंभव और प्रसिद्ध बौद्ध सम्राटों आदि की जीवन घटनाओं और जातक कथाओं का सगुणात्मक सजीव चित्रण होता है तथा वे अभिलेख के रूप में सुरक्षित रहता है। 'थनका' मूलतः भोटी भाषा के शब्द 'थङका' का तद्भव रूप है जहां इसका अर्थ 'चित्रपट' है। ऐसे चित्र गोनपाओं और बौद्ध विहारों की दीवारों में भी चित्रित होते हैं परंतु जब ये कपड़ों पर उतारे जाते हैं तो ये थनका हैं जिन्हें सफाई से लपेट कर सदियों के लिए नहीं, सदा के लिए सुरक्षित रखा जाता है। कपड़े के फलक पर होने के कारण ही ऐसी चित्रकला को थङका का नाम दिया गया है।

थनका का मूल घर तिब्बत है जहां यह आरम्भ में केवल लामाओं द्वारा रेशम के कपड़े पर तैयार किया जाता था। आज भी अधिक धार्मिक महत्त्व के विषय के लिए रेशम के कपड़े को प्रधानता दी जाती है। आज प्रमुखतः खादी और सूती कपड़ा ही थनका के लिए प्रयोग में लाया जाता है और साधारण कलाकार विशेषतः स्त्रियां इसके प्रेरक हैं। इसके लिए अधिक समय तथा श्रम लगता है। संबंधित कपड़े को लकड़ी के बने चौखट पर स्थिरता से कस देते हैं और उस पर वनस्पति–गोंद, अभ्रक तथा तालकचूर्ण से बनाए चिकने लेप की पतली तह बिछाई जाती है ताकि कपड़े के छिद्र भर जाएं और बुनाई एक सार हो जाए। जब लेप सूख जाता है तो कपड़े को नरम और चौड़े विशेष पत्थर से घिसा जाता है जिससे उसकी सतह बिलकुल मुलायम हो जाए।

थनके की विषय–वस्तु बड़ी व्यापक है। बुद्ध का जीवन क्रम, देवी देवताओं के स्वरूप, कालचक्र, बौद्ध दर्शनशास्त्र और बौद्ध सम्राटों की ऐतिहासिक घटनाएं थनकों में प्रदर्शित होती हैं। तान्त्रिक प्रकृति के थनकों में सिद्धों, योगी–योगिनियों और अप्सराओं को दिखाया जाता है। थनका विशेष में जो विषय वस्तु प्रस्तुत की जानी प्रस्तावित हो पहले उसका खाका साधारण कागज़ पर उतारा जाता है। फिर थनके के लिए तैयार किए गए कपड़े के फलक पर चित्रों की रेखाएं कोयले द्वारा दर्शाई जाती हैं। तब उन पर रंग चढ़ाया जाता है। चित्रकारी प्रायः बीच की आकर्षित से आरम्भ की जाती है जिसे केन्द्रीय बिन्दु माना जाता है। रंग ब्रश द्वारा चढ़ाया जाता है। पुराने समय में रंग वनस्पति रसायनों से स्वयं तैयार किए जाते थे। आज भी अधिकतर रंग स्वयं तैयार किए जाते हैं। विद्यार्थियों को जहां चित्र कला सीखनी होती है, वहीं उन्हें रंग बनाने की कला भी सीखनी ज़रूरी होती है। इन रंगों के लिए उन्हें स्थानीय वनस्पति से बहुत दूर नहीं जाना पड़ता। साधारणतः एक विशेष प्रकार के लाल पत्थर को पीस कर उसमें अंडा, छंग तथा वनस्पति गोंद मिलाकर लाल–नीला रंग तैयार किया जाता है। उसमें कुछ पदार्थ मिलाने से रंग का रूप बदलते हैं। कपड़े पर प्रयोग में लाए जाने वाले रंग दीवारों या कागज़ों के रंगों से अधिक सूक्ष्म और टिकाऊ होते हैं। इन्हें

अधिक चमकीला और स्थायी होना ज़रूरी है ताकि उन्हें अधिक देर, बल्कि सदियों तक सुरक्षित रखा जा सके। इस दृष्टि से अनेक साधन अपनाए जाते हैं। याक पशु के सींगों और खुरों को विशेष रूप से पीस कर एक सुरेश बनाई जाती है जिसे रंग में मिलाने से रंग अधिक चमकीला और स्थायी बनता है। इन रंगों के निर्माण में सोना, चांदी, अभ्रक आदि अनेक धातुओं का प्रयोग होता है। अभ्रक का तो कई प्रकार से उपयोग होता है। भिन्न वृक्षों की गोंदें रंगों का रूप बदलने में विशेष भूमिका निभाती हैं।

थनका कला की वस्तु और निधि तो है ही, यह धार्मिक विश्वासों की थाती भी है। लोगों का विश्वास है कि यह ग्रह–दशा को टालता है, भूत प्रेतों के दुष्प्रभाव से रक्षा करता है, डाकिनी, शाकिनी, योगिनी, चण्डाली की कुदृष्टि से बचाता है और भयानक रोगों तथा मानसिक तनाव से मुक्ति दिलाता है। इसलिए लोग इसे सर्वदा अपने साथ रखते हैं, विशेषतया जब दूर यात्रा पर जाना हो तो इसे गोल लपेटकर चोगा की कोख में डाल कर साथ ले जाना भूलते नहीं। बनने पर प्रयोग में लाने से पहले थनके की प्रतिष्ठा की जाती है। इस बारे में योगी मिला–रेपा से संबंधित एक अनुश्रुति बड़ी प्रसिद्ध है। एक भक्त कलाकार ने एक सुंदर थनका बनाया और उसे प्रतिष्ठित करने के लिए अपने गुरु–लामा के पास चल पड़ा। मार्ग में सामने से मिला–रेपा आ रहा था। उसे पहचानता नहीं था, अजनबी जानकर उससे छिपाने के लिए थनका को चोगे के अन्दर डाल दिया। मिला–रोपा तो सिद्ध–योगी था। सब कुछ जान गए। कलाकार से पूछा, ''कहां जा रहे हो''? कलाकार ने उत्तर दिया, ''अपने रिश्तेदारों के पास जा रहा हूं। मिला रेपा ने फिर पूछा, 'गोद में क्या डाला है? कलाकार ने उत्तर दिया, कुछ नहीं! तुम्हें क्या है।''? मिला–रेपा ने उसकी गोद में हाथ डाला। थनका को बाहर निकाला और धरती पर बिछा दिया। पूर्व इसके कि कलाकार जान जाता कि यह क्या कर रहा है मिला–रेपा ने उस पर पेशाब कर दिया। कलाकार ने झट से थनका उठाया, उसे तुरत झाड़ा, मिला–रेपा को ढेर सारी गालियां दीं और आगे चल पड़ा। गुरु के पास पहुंच कर पूरी घटना सुनाई। गुरु ने थनका दिखाने का आग्रह किया। देखा तो जहां–जहां उसका पेशाब पड़ा था वहां चित्र और अक्षर स्वर्ण–मंडित हो गए थे। गुरु के कहने पर कलाकार तुरंत वापिस मुड़ा, मिला–रेपा के चरणों में पड़ा और आयु भर के लिए उसका शिष्य बना।

बौद्धेतर क्षेत्र में थनका को पूर्णतया कला की दृष्टि से देखा जाता है और विश्वभर में इन्हें अमूल्य कलाकृतियां माना जाता है; परंतु बौद्ध धर्मानुयायियों के लिए इनका कलात्मक महत्त्व बहुत गौण और धार्मिक महत्त्व अत्यन्त प्रमुख है। कला–कुशलता की दृष्टि से थनकाकारों के लिए कल्पना–सष्जन का कोई स्थान नहीं है। उन्हें थनकों के चित्रों को अपनी–अपनी सूझ–बूझ या कल्पना से संवारने का अधिकार नहीं है। थनकों की रचना पूर्णतया गुरुओं के आदेशानुसार की जाती है और गुरु भी चित्रों का अंकन धर्मग्रन्थों के आधार पर करता है। उससे बाहर नहीं जा सकता। यदि कोई थनका धर्मग्रन्थों पर आधारित नहीं तो उसे स्वीकार नहीं किया जाता, न ही उसे प्रकाश में लाया जाता है। भले ही वह कला की दृष्टि से कितना ही उत्कृष्ट क्यों न हो। यहां तक कि पृष्ठभूमि की आकृतियां जैसे घास, वृक्ष फल, फूल, पत्ते, पौधे और पशु पक्षी के चित्र भी धार्मिक विश्वास के अनुकूल होने ज़रूरी हैं। ये सब मूल चित्र का विरोधाभास नहीं कर सकते। थनका चित्रों का प्रमुख विषय भगवान बुद्ध, बोधिसत्त्व और अन्य देवता होते हैं। चित्र में इन्हें बीच में दिखाया जाता है। शेष आकृतियों को इनसे कम स्थान दिया जाता है जो मूल चित्र की

अपेक्षा छोटे होते हैं। जातक कथाएं भी थनका चित्रों के लोक–प्रिय विषय रहे हैं।

इस तरह बौद्ध धर्म के लोगों के लिए थनकों का महत्त्व पूर्णतया धार्मिक है। इनके लिए थनका–चित्रांकन का मूल उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है जो जीवन का एक सर्वोत्तम कार्य है। प्रत्येक बौद्ध धर्मानुयायी अपने घर में और अपने पास ऐसा थनका रखना अपना धर्म समझता है। जन्म से मरण तक उनकी विशिष्टता है। बच्चे के जन्म पर बनाया थनका उसे रोग व्याधियों से दूर रख कर दीर्घायु प्रदान करता है, जीवन को सुखी और सफल बनाता है। मृत्यु के अवसर पर इस लिए थनका चित्र बनाए जाते हैं ताकि अगले जन्म में उसे शान्ति और समृद्धि प्राप्त हो। हर प्रयोजन के लिए विशेष थनकों का उपयोग किया जाता है। लम्बी आयु के लिए अमितायु तथा मानसिक भय और विघ्नों पर विजय पाने के लिए तारा के चित्र के थनके उपयोग में लाए जाते हैं। लामाओं की अर्थियों के साथ भी विशेष प्रकार के थनकों का प्रयोग किया जाता है।

एक लोक विश्वास के अनुसार थनका चित्रों के प्रवर्तक स्वयं भगवान बुद्ध हुए हैं। कहते हैं कि श्रीलंका के राजा मूतिंग श्रीशिंग की पुत्री बुद्ध की पुजारिन थी। वह भगवान बुद्ध के चमत्कारों से बहुत प्रभावित हुई और उसने श्रद्धास्वरूप बुद्ध को विशुद्ध मोतियों का हार भेंट में भेजा। बुद्ध हार पाकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसके बदले में उपहार भेजना चाहा। भगवान बुद्ध ने रेशम के कपड़े पर अपने शरीर का ऐसा प्रतिबिम्ब उतारा कि उनकी आकृति सामने आ गई और उसे राजकन्या के लिए भेज दिया। यह चित्र थुपा–वोजेमी बुद्ध कहलाया और इस ने थनका–कला को जन्म दिया।

एक दूसरी धारणा के अनुसार ''एक बार डोडक के राजा उत्तरायण ने किसी बात पर खुश होकर सम्राट बिंबसार को एक बहुमूल्य उपहार भेजा। सम्राट विंबसार ने अपने मंत्रियों की एक सभा बुलाई ताकि उसमें यह फैसला हो सके कि बदले में राजा उत्तरायण को क्या तोहफा भेजा जाए। सभा में कई प्रकार के सुझाव दिए गए परंतु बिंबसर को जो एक सुझाव पसन्द आया वह था कि राजा उतारायण को भगवान बुद्ध का एक चित्र भेंट में प्रस्तुत किया जाए। इसके बाद राजा बिंबसर ने भगवान बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उनके कलाकारों को अपना चित्र बनाने की अनुमति दे दें। चित्र बनाते बनाते चित्रकारों की आंखें भगवान बुद्ध के प्रभा मंडल से चुंधियाने लगी। खुशी की बात थी कि चित्र बनाने के दौरान भगवान बुद्ध एक तालाब के किनारे बैठे थे जिसके कारण उनका प्रतिबिंब पानी की सतह पर साफ नज़र आ रहा था। चित्रकारों ने इसी को देखकर बुद्ध का चित्र बनाया जिसे बाद में सम्राट बिंबसार ने राजा उत्तरायण को भेंट के रूप में पेश किया। यह प्रतिबिम्ब बाद में छ–लुंग अर्थात जल बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

विद्वानों ने थनका चित्रों की तीन प्रमुख शैलियां मानी हैं – मेन–दे–शैली, कर्मा–गार्दे शैली और ऊ–त्सांग शैली। कहते हैं कि मेन–दे–शैली का प्रारम्भ प्रथम दलाई लामा के समय में हुआ था जबकि कर्मा–गार्दे शैली का प्रारम्भ प्रसिद्ध चित्रकार कर्मा–मेकोई–दोर्जे ने किया था। इन दोनों शैलियों के अंतर्गत केवल रंगों के संयोजन तथा थनका चित्रों के प्रयोग में लाए जाने वाले कपड़ों व चित्रों की पृष्ठभूमि में ही थोड़ा बहुत अंतर होता है और कोई खास नहीं। ऊ–त्सांग शैली के प्रारम्भ करने वाले के बारे में अभी कोई सहमति नहीं हो पाई है।

———————

लाहुल घाटी में थंका चित्रण की परंपरा

– सुखदास चित्रकार

लाहुल घाटी में थंका चित्रण की परम्परा की नींव बौद्धधर्म के आगमन एवं प्रचार प्रसार के साथ साथ पड़ी है। अति प्राचीन काल में, अर्थात बौद्ध धर्म के आगमन से पूर्व, यहां इस पद्धति की कला का रिवाज़ रहा हो, ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

लाहुल में गोम्पाओं के वजूद में आने के साथ साथ जहां बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार होने लगा, वहां लाहुल के बाहर, समीप के प्रदेशों से थंका चित्रकार भी आने लगे। इसका स्पष्ट उदाहरण ज़ङ्स्खर के प्रसिद्ध चित्रकार लामा ड्रुबा का आगमन है, जो बाद में गांव सुमनम के स्थाई निवासी बन गए। वह टशी तम्फेल प्रथम जो लद्दाख के तगना गोम्पा के ट्रुलकू माने जाते हैं, के परिचालक एवं चित्रकार के नाते लाहुल आये थे। उन्होंने गुमरङ गांव में ठाकरों के घरों में चित्रकारी का काम किया। इस प्रकार काफी समय तक लाहुल में रहा और काम किया। यहां का परिवेश चित्रकला के लिए उपयुक्त पाया और बाद में लाहुल की किसी युवती से शादी कर ली और स्थाई तौर पर लाहुल में रहने लगे। इसकी कई सन्तानें हुईं इनमें से छोइडक नाम का लड़का चित्रकार बना। एक पुत्री भी, जो बौद्ध भिक्षुणी बन गई थी, प्रसिद्ध चित्रकार सिद्ध हुई। उन्होंने न केवल गोम्पाओं की दीवारों के चित्र बनाए बल्कि लोगों के घरों में रखने हेतु भी थंका चित्र बनाते रहे। जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है कि यह वंश स्थाई तौर पर सुमनम गांव में निवास करने लगे और प्रत्येक पीढ़ी में एक से एक महान चितेरों को जन्म दिया।

चित्रकार छोइडक के पुत्र लामा अंगरूप, और लामा अंगरूप के पुत्र श्री योनतन एक प्रसिद्ध एवं सिद्धहस्त चित्रकार हुए। श्री योनतन के चित्रों की रेखाओं में जो परिपक्वता एवं लोच थी, वह अद्वतीय थी। ऐसा जान पड़ता था कि चित्र की रेखाएं किसी यन्त्र द्वारा खेंची गई हों हाथ से नहीं। बीसवीं सदी के अन्त तक लाहुल घाटी में कई चित्रकारों का प्रादुर्भाव हुआ है। चित्रकारों की बहुतायत का कारण समाज में चित्रकारों का सम्मान था। समाज में उनको 'पोन' के नाम से जाना जाता था। जो धार्मिक दृष्टि से एक सच्चरित्र के पोषक माने जाते थे और कला को धर्म का एक अंग माना जाता था। समाज धर्मनिष्ठ था। जीवन में धर्म को सब से ऊंचा स्थान प्राप्त था।

इसी अवधि में गांव कुवरिङ के मेमें मीफम, गेमुर गांव के ठाकुर मंगलचन्द, गांव मङ्ग्वल के लामा नवङ तनज़िन, गूंधला गांव के श्री तमरिन, गांव खङसर के लामा नवङ, शशुर गोम्पा के लामा दोम्बा आदि थंका चित्रकार हुए।

बीसवीं शती के अंत एवं 21वीं शती के आरम्भ में श्री दोरजे चित्रकार जो तिब्बत का रहने वाला है, मगर लाहुल की एक लड़की से विवाह कर स्थाई रूप से मनाली, कुल्लू में रहता है, के कला स्कूल में शिक्षित लाहुल के कई नवयुवक थंका चित्रकार, कला साधना में व्यस्त हैं। भविष्य की कोख में महानता को छिपाए कौन–कौन से कलाकार लाहुल एवं प्रदेश के परदे पर दिखाई देंगे, इस दृश्य को देखने के लिए हमारी आंखें लालायित हैं।

मैं लाहुल के थंका चित्रण प्रणाली पर संक्षिप्त जानकारी देते हुए, जो मुझे मालूम था, आप से क्षमा चाहता हूं। आगे इस विषय में और जानकारी प्राप्त कर आपके सम्मुख पेश कर सकूंगा इस आशा के साथ जय हिन्द!

———

कुलूत जनपद में नागों एवं अप्सराओं का वर्चस्व

– तेजराम नेगी

सातवीं कड़ी में आपने पढ़ा ––

राय आखाड़ा में वृद्ध महिला के घर पर भोजन करने के पश्चात् कालीनाग का भिक्षुक के भेस में ही व्यासर गांव की ओर प्रस्थान करना। व्यासर गांव के ठाकुरों से संघर्ष। राय आखाड़ा और व्यासर के ठाकुरों का मलियामेट करने के लिए जिल्हणी धार में जाकर एक बड़े सरोवर का निर्माण करना तथा लबालब भरे सरोवर का टूटकर भयंकर बाढ़ का रूप धारण करना। इस बाढ़ द्वारा व्यासर और राय–आखाड़ा के ठाकुरों की गढ़ियों के साथ–साथ उनके द्वारा शासित सारे क्षेत्र का मलियामेट करना।

आठवीं कड़ी ––

राय–आखड़ा और व्यासर के ठाकुरों और राणाओं का मलियामेट करने के पश्चात् काली नाग उन दोनों मां बेटी के पास उनका दुःख–दर्द देखने के लिए आया। उनको सुरक्षित देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और कहा –''हे मां! अब तुम्हीं मेरी मां और तुम्हारी यह बेटी बहिन है। अब तुम किसी बात की चिन्ता न करना। जब भी तुम्हें मेरी आवश्यकता अनुभव हो, अपने मन में मेरा ध्यान करना, मैं तुरन्त आप दोनों की सेवा में पहुंच जाऊंगा।

शिरढ़ के ठाकुरों से संघर्ष ––

मां और बेटी से विदा लेकर भिक्षुक–भेस में ही काली नाग ने अपने उसी गुफानुमा–विवर की ओर प्रस्थान किया। अभी वह अपने स्थान पर पहुंचा भी नहीं था कि मार्ग में नांगाबाग–बिहाल में उसे एक 'नड़' मिला। दोनों में मित्रता हो गई, वे दोनों बड़े गांव राय–आखाड़ा पहुंचे जो आजकल शिरढ़ गांव के नाम से प्रसिद्ध है। वे दोनों विश्राम करने के उद्देश्य से एक ऐसे एकान्त और पानी वाले स्थान पर जा बैठे, जिस स्थान का नाम पनिहारटू–ठाणा था। उन दोनों को अब भूख भी सताने लगी थी। तब काली नाग ने कहा–''हे भक्त! तुम इस स्थान पर बैठकर नमक–मिर्च पीस कर तैयार रखो, मैं राणाओं के घर से सत्तू मांग कर लाऊंगा और फिर हम दोनों सत्तू खाकर अपनी क्षुधा का शमन करेंगे।

काली नाग शीघ्र ही राणाओं की गढ़ी में पहुंचा और मुख्य द्वार के अन्दर राणाओं के सम्मुख पहुंच कर उसने भिक्षा की याचना की। इस पर मुख्य राणा ने कहा–''हे बाबा! हमारे यहां एक नियम है कि हम बिना काम किए कोई भिक्षा नहीं देते। इसलिए तुम्हें भिक्षा तभी मिलेगी जब तुम हमारा कुछ कार्य करोगे।'' इस पर काली नाग ने कहा–''मुझे आपकी शर्त और नियम स्वीकार है, मेरे बूढ़े शरीर योग कोई ऐसा कार्य बताएं जिसे सुगमता से कर सकूं।'' अभी आप हमारे साथ जुआ–पांसा खेलो। यदि आप बाज़ी जीतने में सफल होते हैं, तो मैं आपको एक सोने का टक्का दूंगा, परन्तु जब मैं बाज़ी जीतता हूं तो आप मुझे कौन सी वस्तु देंगे, क्योंकि धन तो आपके पास होगा नहीं।'' राणा की इसी शर्त को स्वीकार करते हुए भिक्षुक ने कहा–''हे राजन! आपका कहना ठीक है हम जैसे साधु संन्यासियों के पास कोई भी मूल्यवान वस्तु नहीं होती। परन्तु मैं आप को सोने के टक्के से भी कीमती वस्तु देने का सामर्थ्य रखाता हूं। मेरे पास युद्ध–कला सम्बन्धी शब्द–वेधी बाण चलाने की विद्या है जिससे मैं आपको इस कला में निपुण बना सकता हूं। चौसर की बाज़ी आरम्भ हो गई। इस में एक ओर भिक्षुक अकेला और दूसरी ओर बहुत

से राणे और ठाकुर थे। इस बाज़ी में राणे और ठाकुर भिक्षुक से पराजित होते गए। इस प्रकार वे अपनी सारी सम्पत्ति से हाथ धो बैठे। अपनी सारी सम्पत्ति उस संन्यासी के सपुर्द करने के स्थान पर राणे और ठाकुर मिल कर उसे ज़ान से मारने की धमकी देने लगे और उसे धक्के मार कर अपनी गढ़ी से बाहर निकाल दिया।

राणे ठाकुरों द्वारा अप्रत्याशित आक्रमण से भिक्षुक हतप्रभ हो गया, सीधा कालीचांग नामक पर्वत शिखर पर जा पहुंचा। वहां पर एक विशाल सरोवर का निर्माण किया। सरोवर को पानी से भरपूर करने के पश्चात् उसे तोड़ डाला। इस सरोवर का पानी भयंकर बाढ़ की सूरत में बड़ी शीघ्रता से बहता हुआ आगे बढ़ा और राणे–ठाकुरों की सारी भवननुमा गढ़ियों को अपने घेरे में लेता हुआ और साथ ही 'राय–आखाड़ा' (प्राचीन शिरढ़ गांव का नाम भी यही था) के लगभग दो सौ घरों का भी मलियामेट कर दिया। भिक्षुक की प्रतीक्षा में बैठा उसका भक्त 'नड़' भी इस बाढ़ की चपेट में आ गया। अपने भक्त की याद आते ही वह शीघ्रता से पनिहारटू–ठाणे पहुंचा। परन्तु वह अपने स्थान पर नहीं मिला। उसकी खोज करते–करते वह उस स्थान पर आया जहां आज भी शैल–मूर्ति का पत्थर है। वहां पर एक बहुत बड़ी कशाम्बल की झाड़ी थी। नड़ का मृत शरीर उस झाड़ी में फंसा हुआ था। उसे झाड़ी से निकाल कर एक स्थान पर सुरक्षित रखा। उस नड़ का घर सोयल गांव में था। वह अपने ससुराल भुट्टी गांव से अपने घर लौटते हुए भिक्षुक को नांगबाग के स्थान पर मिला था। उस भिक्षुक ने शीघ्र ही एक व्यक्ति उसके घर सोयल गांव की ओर भेजा। उसके घर पर उसकी पत्नी, एक लड़का और एक लड़की थी। पता लगने पर वे तीनों ही उस स्थान पर पहुंचे। भिक्षुक ने सारी घटनाएं विस्तार से उन्हें बता दी। सारी बातें सुनने के पश्चात् उन सब ने अन्तिम क्रियाकर्म की प्रक्रिया अनुसार उसे एक बड़े पत्थर के नीचे दफन कर दिया। दफन की प्रक्रिया निभाने के पश्चात् नड़ की लड़की ने किंचित भावावेश में आकर भिक्षुक से कहा –''बापू के न रहने से हमारा परिवार अब अनाथ हो गया है। अतः हे बाबा! अब हमारे जीवन यापन का साधन आप को ही जुटाना पड़ेगा। अब आपको हमारे साथ मिलकर हर तीसरे वर्ष इसी स्थान पर इनकी अचानक मृत्यु के उपलक्ष्य में तृण–छेदन करना पड़ेगा और हमारे पालन–पोषण का उत्तरदायित्व भी निभाना पड़ेगा।'' लड़की की सारी बातें सुनकर भिक्षुक ने कहा, ''हां बेटी! ऐसा ही होगा। वह सब उत्तरदायित्व मैं निभाऊंगा।'' नड़ परिवार को पालन–पोषण का आश्वासन देकर भिक्षुक इसी स्थान पर एक आश्रम बनाकर अपनी तपः साधना में लीन रहने लगा जिससे इस स्थान का नाम सिद्धपुर हो गया। कहते हैं कि इससे पूर्व इस स्थान का नाम शिवपुर था। कालान्तर में शिवपुर से अपभ्रंश होकर सिद्धपुर हो गया। और अब सिद्धपुर से अपभ्रंश होकर शिरढ़ नाम प्रचलित हो गया। इस आश्रम में रहकर भिक्षुक हर तीसरे वर्ष नड़ के परिवार को बुला कर नड़ की मृत्यु का प्रायश्चित प्रक्रिया निभाता रहा। कालान्तर में इसी प्रायश्चित प्रक्रिया निभाने से आज के प्रसिद्ध मेले शिरढ़–काहिका का स्वरूप बन गया।

सात बहिनें अप्सराओं का रहस्य ––

इस प्रकार व्यासर, 'राय–आखाड़ा' (मन्दरोल) तथा 'राय–अखाड़ा' (शिरढ़) आदि विस्तृत क्षेत्रों में निरंकुश शासन प्रणाली अपनाने वाले निष्ठुर तथा अत्याचारी ठाकुरों, राणाओं को समाप्त करने के पश्चात् कालीनाग एक बार फिर उन दोनों मां और बेटी के पास पहुंचा और कहा–''हे माता! अब आप दोनों मेरे साथ चलो, क्योंकि अब यहां का सारा क्षेत्र जनशून्य हो गया है और इस स्थान पर आप दोनों के अतिरिक्त मीलों दूर–दूर तक कोई भी मनुष्यों की बस्ती नहीं रही है। जो समय आने पर आपके साथ दुःख–सुख में भागीदारी निभाते। अब आप दोनों अपनी आखें बन्द करके मेरे दोनों कन्धों पर चढ़ जाओ मैं आप दोनों को अब इस स्थान से उत्तराखण्ड की दिशा

में बने एक ऐसे रमणीक एवं दिव्य स्थान पर पहुंचा दूंगा जो स्वर्ग से भी सुंदर है। वहां पर आपको जीवनोपयोगी मनवांछित वस्तुएं स्वतः ही उपलब्ध होती रहेंगी। आप दोनों कलियुग आरम्भ होने तक जीवित रहेंगी। तुम दोनों को अपनी इच्छानुसार मृत्यु प्राप्त होगी।

इस प्रकार उन दोनों की आखें बन्द होते ही कालीनाग ने एक बड़े आकार के पक्षी की भान्ति आकाश की ओर उडान भरी और उत्तराखण्ड की ओर ले गया। गन्तव्य स्थान पर पहुंचा कर तथा वहां पर एक सरोवर के तट पर एक सुन्दर सी कुटिया बना कर उसमें बैठा दिया और कहा–"अब आप दोनों इसी स्थान पर कलियुग के आरम्भ होने तक अपने इष्ट की आराधना में लीन रहकर अपना अगला जन्म सुधारने में मन लगाना। घोर कलियुग आने पर मैं भी आपके निकट ही किसी स्थान पर तपस्या में लीन हो जाऊंगा। अभी मैं फिर उसी स्थान पर वापिस जा रहा हूं और वहां जाकर जनता–जनार्दन की सेवा में तत्पर रहूंगा तथा दुष्ट प्रवृत्ति के तत्त्वों का नाश करता रहूंगा।" इतना कहकर कालीनाग ने वहां से प्रस्थान किया।

इस प्रकार उत्तराखण्ड से लौटते हुए जब कालीनाग 'हामटा–जोत'(हेमकूट–पर्वत) के दामन में एक दिव्य सरोवर के निकट से गुज़रे तो उन्हें वहां एक देव–अप्सरा को अकेली ही भ्रमण करते तथा फूलों को बीनते हुए देखा। कालीनाग ने एक दिव्य पुरुष का रूप धारण कर उसके सम्मुख जाकर पूछा– "हे वनदेवी! आप कौन हैं और इस निर्जन स्थान में अकेली ही भ्रमण कर रही हैं। आप कहां से आ रही हैं और इस रमणीक क्षेत्र में किस प्रयोजन से इन फूलों को बीन रही हैं?"

अपने सामने एक दिव्य पुरुष को देखकर देव–अप्सरा ने कहा –"हे महाराज! मैं अपना परिचय किसी अपरिचित पुरुष को नहीं दे सकती। सर्वप्रथम आप ही बताएं, आप कौन हैं और किस प्रयोजन से आप ने देवराज इन्द्र द्वारा प्रतिबन्धित इस दिव्य क्षेत्र में गुप्त रूप से आकर अतिक्रमण और सीमा का उल्लंघन किया है? आप का परिचय प्राप्त होने पर ही मैं अपना परिचय देने में समर्थ हो सकती हूं।"

देव–अप्सरा का क्षोभ भरा उल्लाहना सुनकर कालीनाग ने कहा – "हे देवी! मैं वासुकिनाग का पुत्र कालीनाग हूं। मेरी उत्पत्ति कुलूत–जनपद के गोशाल गांव में हुई है। वासुकिनाग गोशाल गांव की एक कन्या की सुन्दरता पर मोहित होकर उससे प्रेम विवाह कर बैठा। उस कन्या के उदर से ही हम अठारह नागों की उत्पत्ति हुई है। मैंने अपना आश्रम कुलूत देवभूमि के एक गांव सिद्धपुर में बनाया है। कुलूत–जनपद एक बहुत ही रमणीक एवं देव–तुल्य स्थान है। वहां की दो महिलाएं जिनमें एक वृद्ध मां और बेटी मेरी परम भक्तिन बनी हुई हैं। मैं उन्हें लेकर उत्तराखण्ड के एक दिव्य स्थान पर पहुंचा कर लौटते हुए भूलवश आपके इस रमणीक क्षेत्र में पहुंचा हूं और इस स्थान पर आपको देखकर जिज्ञासावश आपका परिचय प्राप्त करने के उदेश्य से आपके सामने पुरुष–भेस में प्रकट होकर जो धृष्टता मैंने की है उसकी मैं क्षमा चाहता हूं। इसलिए यदि आपको मेरी बात पर विश्वास हो तो अपना परिचय देने की कृपा करें।" कालीनाग का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् उस देव–अप्सरा ने कहा– "हे नागराज! मैं इस स्थान पर अकेली नहीं हूं। हम सात बहिनें निकट के दिव्य सरोवर में निवास करती हैं। हम सातों बहिनें देवलोक की अप्सराएं हैं। आपके सामने इस हिम शिखर की गोद में एक काले बादल का टुकड़ा दिखाई दे रहा है, ठीक इसी के नीचे एक सरोवर है उसी सरोवर में हम सब बहिनें निवास करती हैं। हमारी आज्ञा के बिना कोई भी पुरुष इस दिव्य सरोवर की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। हम सब इस बादल के टुकड़े के नीचे इस सरोवर में तथा इसकी तलहटियों पर स्नान करती, जल–विहार करती, नाचती और गायन–विद्या के अभ्यास में निमग्न रहती हैं। हम नृत्य–कला और

गायन कला में रुचि रखने वाली कला की देवियां हैं। हमारी सबसे बड़ी बहन का नाम कमला है। वही हमारे कार्य की मार्ग–दर्शिका और इष्ट देवी है। उसकी आज्ञा के बिना यहां का पत्ता भी नहीं हिल सकता।'' सात बहिनों का परिचय सुनकर कालीनाग ने प्रसन्न होकर कहा – ''ओहो! हम सब तो एक ही वंश से संबंधित हैं, क्योंकि मैंने अपने वयोवृद्ध विद्वानों से सुना है कि नागों और अप्सराओं की उत्पत्ति महर्षि कश्यप से हुई है। अप्सराओं और नागों की माताएं भी आपस में सगी बहिनें थी। हमारे पूर्वज एक ही देवयोनिक जाति से संबंधित थे। इस कारण हम सब एक ही देवयोनि से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए नागों और अप्सराओं का आपस में भाई और बहिन का रिश्ता है। अब मुझे अपनी बड़ी बहिन का दर्शन कराने का अवसर प्रदान कीजिए।''

कालीनाग की मनोभावना भांप कर वह गणिका अपनी बड़ी बहिन कमला के पास पहुंची और कहा कि इस सरोवर से बाहर मेरी भेंट एक नवागंतुक दिव्य पुरुष से हुई है वह अपने आप को कालीनाग बता रहा है। अब वह आप और अन्य सब बहिनों से भी मिलना चाहता है। अतः आप सब इस सरोवर से बाहर निकल कर उससे मिलो। तब सभी बहिनें सरोवर से बाहर निकलकर कालीनाग से मिलने गईं। जब सभी बहिनें कालीनाग के समीप पहुंचीं तो कालीनाग ने प्रसन्न होकर सभी देवांगनाओं से कहा कि हम सब एक ही पूर्वज की सन्तानें हैं। प्रजापति दक्षराज की तेरह कन्याएं महर्षि–कश्यप को ब्याही गई थीं, जिनसे सुर, असुर, देव, दानव, नाग, सर्प, पशु–पक्षी, देवांगनाएं, अप्सराएं, गणिकाएं आदि की उत्पत्ति हुई है। महर्षि–कश्यप को सारी सृष्टि का पिता भी कहा जाता है। उनकी तेरह पत्नियां अर्थात् हमारी माताएं परस्पर सगी बहनें थीं। इसी कारण नागों, सर्पों, अप्सराओं तथा गणिकाओं का भी आपस में भाई–बहिन का सम्बन्ध माना जाता है।

अब आप सब बहिनें मुझे बताएं कि इस काले बादल की छाओं तले सरोवर के अन्दर क्या करती रहती हैं। अब घोर कलियुग का युग निकट है। इसलिए सब बहिनें इस सरोवर की कारागार से बाहर निकल कर मेरे साथ चल कर कुलूत देवभूमि के रमणीक क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करो। वहां अपने–अपने पसन्द के क्षेत्रों का चुनाव करके दुःखी मानवता की भलाई में जुट जाओ। क्योंकि महाभारत के नायक श्री कृष्ण और पाण्डवों के वंशजों का अस्तित्व समाप्त होने के पश्चात् इस देवभूमि में असामाजिक तत्वों ने फिर से सिर उठाना आरम्भ किया है जिन्होंने ऋषि–मुनियों, साधु–संतों एवं अन्य विद्वानों को भयंकर कष्टों की ओर धकेल दिया है। अतः हम सब का कर्त्तव्य है कि इस देवभूमि में जाकर दुःखी प्राणियों की सहायता करें और ऋषि–मुनियों की सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत करें।

कालीनाग के इस कथन पर सबसे बड़ी बहिन कमला ने कहा कि हम सब बहिनें भी इस सरोवर के अतिरिक्त उन भिन्न–भिन्न उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में रहना पसन्द करेंगी जहां इस सरोवर की भान्ति पवित्र जल–स्रोत एवं स्वच्छ पानी के झरने हों। अतः इस प्रकार के निर्मल–पवित्र क्षेत्रों के चयन में आपको भी हमारी सहायता करनी होगी। इस पर कालीनाग ने कहा, आप सब बहिनें इस प्रकार के स्थान बनाने और चयन करने में स्वयं सक्षम हैं और मैं तो हर समय आपकी सहायता में संलग्न रहूंगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इस प्रकार इन सब अप्सराओं ने कालीनाग के साथ कुलूत देवभूमि की ओर प्रस्थान किया और फिर शिरढ़ गांव के पीछे ऊंचे शिखरों में स्थित ''हिम्बरी–परभी'', व्यासर गांव के पीछे ''दाणुधार, जिल्हणी धार'', कोठी सारी की ''लोहड़ी–आच्छरी'' आदि उच्च शिखरों का चयन किया। कालीनाग ने भी इन देवांगनाओं को यथास्थान स्थापित कर अपने आश्रम ''सिद्धपुर'' (शिरढ़) की ओर प्रस्थान किया।

———

बौद्ध धर्म और पश्चिमी हिमालय में उस का प्रसार

– शिवचन्द ठाकुर,

रिटायर्ड एच.ए.एस., लाहुल

हज़ारों वर्ष नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से पैदा होते हैं भगवान बुद्ध जैसे।
पढ़े जो गौर से इतिहास के पन्ने हमने,
तो आंधियों में भी जलते हुए चिराग मिले।

ऊंच–नीच, अमीर–गरीब, सरूप–कुरूप, ये सब कर्मों का फल है। भगवान बुद्ध अहिंसा के समर्थक थे। वह किसी जीव की हत्या करना पाप मानते थे। इस लिए उन्होंने यज्ञ में बलि का विरोध किया। वह किसी जीव की हत्या को पाप मानते थे, लड़ाई झगड़े युद्ध करने का वह विरोध करते थे।

निर्वाण – भगवान बुद्ध के विचारों में मनुष्य का अंतिम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है और यह अष्ट मार्ग पर चलने से ही प्राप्त होता है। निर्वाण प्राप्त करने से मनुष्य सांसारिक बंधनों से मुक्त होता है। भगवान बुद्ध कहते हैं यह संसार दुखों का घर है, और इंसान इसलिए दुखी है कि वह जो कुछ चाहता है उसे प्राप्त नहीं होता है। दूसरा सत्य है कि दुख का कारण इच्छा और तृष्णा और ख्वाहिश है। जब तक मनुष्य तृष्णा का दास है वह दुख से छुटकारा नहीं पा सकता है, तीसरा सत्य, तृष्णा यानि इच्छाओं का दमन करके दुख से छुटकारा पा सकता है। चौथा सत्य है इच्छाओं से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय अष्ट मार्ग या दरम्यानी रास्ता। यानि मनुष्य को सदा सत्य दृष्टि रखनी चाहिए। सत्य संकल्प, मन की इन्द्रियों के भोग विलास में न पड़ने देना, सत्य वाणी, झूठ, निन्दा, गाली–गलौच से मुंह को गन्दा न करना, सत्य, कर्म, हिंसा, चोरी, पाप न करना, आजीविका, रोज़गार के लिए ऐसा धन्धा अपनाना जो समाज के लिए नुकसान न करे, सत्य प्रयत्न, बुरे और गन्दे विचार का त्याग करना, सत्य ज्ञान, सुख और दुख पाप–धर्म के प्रति मनुष्यों को जागृत करना, सत्य समाधि, ज्ञान की मदद से चित्त को एकाग्र करना।

प्राचीन काल में हमारे देवी–देवताओं, ऋषि–मुनियों, सन्त–महात्माओं ने जो मार्ग हमें दिखाया था उसे हम धीरे–धीरे भूलते जा रहे हैं। हम आज रॉकेट, मिसाइल, एटम बमों के दहशतगर्दी में सब कुछ भूलते जा रहे हैं क्यों कि यह दोनों मेल नहीं खाते हैं। इस नए युग में हिमाचल प्रदेश खासकर कुलूत देश और लाहुल स्पीति के समस्त देवी–देवताओं और महात्माओं की भूमि भारतीय जीवन संस्कृति व कला का प्रतीक है। शायद यह इसलिए मुमकिन हुआ क्योंकि सदियों से पर्वतों, गुफाओं, जंगलों में घोर तपस्या कर ऋषि–मुनियों, साधु–संतों, महात्माओं ने अपने लिए कुछ नहीं मांगा। उन्होंने जो कुछ भी मांगा केवल मानब जाति की भलाई और खुशहाली के लिए मांगा। परंतु मानव जाति इस कदर बेबफा और न शुक्रगुज़ार बन गया कि वह महात्माओं, देवी–देवताओं, ऋषि–मुनियों को भूलता जा रहा है। मानव जाति इस कद्र खुदगर्ज़ शक्तिशाली बना गया कि वह दूसरों के माली जायदाद हड़प करने के चक्कर में पड़ गया। आज देवभूमि संत–महात्माओं पर विश्वास रखने वाले धार्मिक, ऐतिहासिक परम्पराओं को ज़िन्दा रखते हुए हम उस महान व्यक्ति भगवान बुद्ध को याद करते हैं जो एशोआराम की ज़िन्दगी को तिलांजलि देकर मानव जाति के कल्याण के लिए उठ खड़ा हुआ और भारत वर्ष में अन्धकार, बलि की प्रथा, ऊंच–नीच के भेदभाव को दरकिनार कर एक नया रास्ता दिखाया और भारत को अन्धकार से बचाने के लिए अवतार लिया।

तिब्बत में बुद्ध धर्म का आगमन :– 640–650

सबसे पहले तिब्बत के सम्राट स्रोंगचन गम्पो जो एक शक्तिशाली सम्राट थे, उसने दो रानियों से एक नेपाल के राजा की लड़की और दूसरी चीनी शहज़ादी से शादी की। वे अपने दहेज में भगवान बुद्ध की प्रतिमाएं अपने साथ

लाई और दो मठ बनाकर उन मूर्तियों को रखकर बुद्ध धर्म का प्रचार शुरू किया। तिब्बत में बुद्ध धर्म के पहुंचने से कुछ ही समय में छठी शताब्दी के पूर्व भारत में तमाम उत्तर क्षेत्र में बुद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हो चुका था। इस तरह महायान बुद्ध धर्म के प्रचार के साथ ज़्यादा प्रसार हो गया। इस तरह तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया, कोरिया के महायानी, लाहुल स्पीति, किन्नौर, पांगी में फैल गया। 11वीं शताब्दी के शुरू में एक फारसी विद्वान भारत आया उसका नाम अल वैरोनी था। वह अपनी यात्रा में लिखता है कि दुर्गम हिमालय में एक भूतेश्वर नामक क्षेत्र है जो कश्मीर से पूर्व और नेपाल से पश्चिम की तरफ है, उत्तर में ऊंचे पहाड़ों के पार तिब्बत है और दक्षिण में भारत है। यह लिखता है कि यह सूचना उस देश से आए एक यात्री ने दी। उसने बताया कि वहां पर बहुत ऊंचे पर्वत हैं और गहरी नदी घाटियां। अल वैरोनी का मतलब किन्नौर–बुशेहर, या स्पीति का इलाका होगा।

रल्पाचन (817–836) तिब्बत का राजा था और वह बुद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने तिब्बत में कई बौद्ध मंदिर और विहार बनवाए। उसके भाई लङ धर्मा (836–842) को यह सब अच्छा नहीं लगा, वह बुद्ध धर्म को मानने वाला नहीं था। उसने अपने भाई को मार डाला और बौद्धों को यातनाएं देने लगा। इससे बहुत से बौद्ध अपनी सुरक्षा के लिए पश्चिम की तरफ भागे। लंग धर्मा एक शैतान के रूप में उभरा और 842 ईस्वी में लंग धर्मा को एक लामा पलगी दोरजे ने जान से मार दिया। इस खुशी में आज तक छेशू मेला शुरू हुआ। लंग धर्मा की मौत के बाद पूरी एक शताब्दी तक अव्यवस्था फैली रही आखिर में उसका कैयद निमागोन 980 ईस्वी में पश्चिमी तिब्बत में आया और वहां उसने पुरंग के ज्ञालफो गेसेन ल्सन की पुत्री से विवाह किया। इसकी मौत के बाद वह शासक बना जहां उसने गुगे, लद्दाख और साथ ही लगते भाग को जीत लिया। उसने अपनी मौत से पहले अपने राज्य को तीन पुत्रों में इस प्रकार बांटा कि बड़े लड़के को लद्दाख, दूसरे को पुरंग–गुगे, तीसरे पुत्र को ज़ङस्खर–स्पीति मिला। लद्दाख के राजा उत्पाल (1000–1110) ने 11वीं शताब्दी में पुरंग–गुगे तथा साथ के कई क्षेत्रों को अपने कब्ज़े में कर लिया। शायद इसी मौके पर किन्नौर के शासक उत्तर की तरफ से आक्रमण के डर से अपनी राजधानी को कामरू से सराहन में लाए। तिब्बती विद्वान रिंनचेन ज़ङपो (958–1045) का नाम भी लिखने के काबिल है। भारत के दीपंकर श्री ज्ञान अतीश (982–1054) भी इन्हीं के समकालीन थे। इस भारतीय विद्वान ने भी तिब्बती बौद्ध धर्म पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। इन दो विद्वानों ने बौद्ध धर्म तथा कला के लिए जो कुछ किया उससे यह मालूम होता है कि किस प्रकार भारत से बौद्ध कला तिब्बत और पश्चिमी हिमालय के क्षेत्र किन्नौर, लाहुल–स्पीति और लद्दाख पहुंचे।

तिब्बत में बौद्ध धर्म के पहुंचने के कुछ ही समय (छठी शताब्दी) पूर्व भारत में तमाम उत्तरी क्षेत्र में महायान बुद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हो चुका था। शायद ढुलनंग और रमोछे के विहार महायान शैली पर बने होंगे। इन विहारों की खासियत यह थी कि जहां भगवान सादगी पर ज़्यादा ज़ोर देते थे वहां इनका बाहरी आडम्बर ज़्यादा होता था। इस तरह महायान बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ ज़्यादा फैलता गया। इस तरह तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया, कोरिया के महायानी विहारों में बुद्ध की प्रतिमाओं को भी अलंकारों से अलंकृत किया जाता था। उन दिनों से लेकर इन क्षेत्रों में आज तक लगातार यह परंपरा से चला आ रहा है। यह सोचने लायक है कि बाद में तिब्बत में विकसित बौद्ध धर्म के चार सम्प्रदायों में से लाहुल में कर्ग्युदपा सम्प्रदाय, स्पीति में सक्या गेलुग्पा सम्प्रदाय और किन्नौर में कर्ग्युदपा सम्प्रदाय का अलग–अलग प्रभाव क्यों है? इस वक्त लाहुल में शशुर गोम्पा, ओथङ गोम्पा, गुरु घंटाल गोम्पा, तयुल गोम्पा, प्यूकर, गेमुर, लब्क्याङ, करदङ गोम्पा, सिला गोम्पा, ग्रम्फू गोम्पा, छोटे बड़े अलग–अलग सोलह प्रकार के विहार विद्यमान हैं। इनमें सबसे पुराना विहार शशुर गोम्पा है। इसकी स्थापना 11वीं सदी में हुई थी।

मौजूदा वक्त में लाहुल में आठ बड़े और उतनी संख्या में छोटे–छोटे विहार विद्यमान हैं। इन सबमें पूजा और साधना की पद्धति कर्ग्युदपा और निंगमापा सम्प्रदायों का मिला जुला रूप है। तिब्बत में विकसित बौद्ध धर्म के चार

सम्प्रदायों में सबसे पुराना निंगमापा संप्रदाय है जो आचार्य शान्त रक्षित और आचार्य पद्मसम्भव द्वारा तिब्बत में प्रचारित बौद्ध धर्म है। ये दोनों आचार्य तत्कालीन नालंदा विश्वविद्यालय के प्राध्यापक थे। शुरू–शुरू में निंगमापा सम्प्रदाय के विहार थे। 15वीं सदी के शुरू में जब तिब्बत के अलग सम्प्रदाय और मठ और मन्दिरों में प्रतिद्वन्द्विता का दौर चल पड़ा था तो उसका प्रभाव लाहुल–स्पीति और किन्नौर में भी पड़े बगैर नहीं रहा। उस वक्त तिब्बत से स्पीति, लाहुल और किन्नौर के उत्तरी छोर में भोट जाति के लोग आकर बसे। यह लोग प्राचीन समय में उत्तर यूरोप की तरफ से अपना पशुधन साथ लेकर आए। स्पीति वासियों के वंश नामों से पता लगता है कि आदि काल वंश वह लोग ज़ंस्खर, लद्दाख और गिलगिट से आए। बाद की शताब्दी में कुछ लोग पश्चिमी तिब्बत से आकर उत्तरी छोरों में बस गए। वह लोग कब और किन हालात में अपना देश छोड़कर यहां आए कहना बहुत कठिन है। गालिवन शायद वहां की राजनैतिक कठिनाइयों ने उन्हें अपने घर बार छोड़ने पर मजबूर किया होगा और वह लोग सुरक्षित जगह आ गए। आसमान से बातें करने वाले पहाड़ों, अति सर्दी, ठण्डी जलवायु और कुदरती प्रक्रियाओं ने उन लोगों के असंख्य देवी–देवताओं, नदी–नालों और पहाड़ों की आत्माओं पर विश्वास करने पर मजबूर किया। कठिनाइयों, मुसीबतों से रक्षा पाने की मकसद से वह हमेशा इनकी प्रार्थना करते थे और बलि देते थे। यह धारणाएं और विश्वास तब तक बनी रहीं जब तक बौद्ध धर्म ने इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया। ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है कि प्राचील काल में स्पीति में हिन्दू राजाओं का राज था। इन राजाओं के नाम के साथ सेन शब्द लगता था। कुल्लू के निरमण्ड में परशुराम के मन्दिर में एक ताम्रपात्र लेख है जो पुरातत्व के आधार पर सातवीं सदी का है। इस पर स्पीति के राजा समुद्रसेन का नाम है। उनके पिता रुद्र सेन संजय सेन, पितामह वर्मासेन। इस मौके पर हमें कुल्लू के इतिहास में स्पीति के दो राजाओं का उल्लेख मिलता है। स्पीति के राजा राजेन्द्र सेन ने कुल्लू पर हमला करके इसे राज्य करद बनाया। राजा रूद्रसेन लगभग 600 से 650 ई0 के समय में भी कुल्लू स्पीति राजा का करबरदा राज्य था। परंतु कुल्लू के राजा प्रसिद्ध पाल ने स्पीति के राजा को रोहतांग दर्रे के पास हराकर राज्य को मुक्त कर दिया। स्पीति का पतन चेत सेन के समय तब हुआ जब लद्दाख ने इसे अपने अधिकार में ले लिया। 17वीं सदी में तिब्बत ने लद्दाख पर हमला कर दिया, लद्दाख की हार हुई, तब से स्पीति तिब्बत के हाथ आया। लद्दाख के राजा देलेग नमज्ञल ने स्पीति सेनापति की पुत्री से विवाह किया और दहेज के तौर पर स्पीति को वापिस ले लिया। 1846 ई0 में यह क्षेत्र अंग्रेज़ी सरकार के अधीन आया और कुल्लू का एक अंग बन गया।

राजा येशे ओद ने रिनचेन ज़ङपो तथा बीस दूसरे व्यक्तियों को बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन के लिए काश्मीर भेजा। वह तीन बार भारत आया और 17 साल तक भारत रहा। रिन्चेन ज़ङपो और अन्यों को छोड़ कर सभी अपने अध्ययन पूरा किए बगैर मलेरिया की वजह से मौत के मुंह में समा गए। रिन्चेन ज़ङपो कई बार कई साल तक काश्मीर में अध्ययन करता रहा। उसने भारत का भी भ्रमण किया। उसके काश्मीर जाने का क्या मार्ग रहा होगा इसके दो ही संभावनाएं हैं। एक तो सतलुज नदी घाटी के नीचे और फिर छोटी–छोटी पहाड़ियों, ब्यास नदी को पार कर के। रिन्चेन ज़ङपो ने अपने जीवन काल में 108 बौद्ध मंदिर और मठ बनवाए। इनमें भी ज़्यादातर सतलुज घाटी में बनवाए गए। रिनचेन ज़ङपो ने कश्मीर के 32 बौद्ध कलाकारों की सेवाओं को प्राप्त करके इन मंदिरों तथा मठों का निर्माण करवाया। वे कलाकार मूर्तियां बनाने में भी निपुण थे। इनमें से जो सबसे चतुर कारीगर था उसका नाम विधाका था। उन्होंने प्रबल भारतीय तथा तिब्बती प्रभाव के अंतर्गत कई बौद्ध विहार बनवाए। बौद्ध मंदिरों तथा विहार जिनके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि उन्हें रिंनचेन ज़ङपो ने ही बनवाया था। इनमें कुछ इस प्रकार थे – ताबो,लालुंग, ढंकर, नाथन, लाहुल के गैमूर। सिर्फ रिनचेन ज़ङपो ही एक मात्र बौद्ध भिक्षु नहीं था जिसने 11वीं शताब्दी में बौद्ध

शेष पृष्ठ 39 पर.....

भटकती आत्मा शान्त हुई

– सत्य पाल भटनागर

सुरेश इंगलैंड से अपने पूर्वजों के देश भारत में पर्यटन के लिए आया। उसके पूर्वज जालंधर (पंजाब) से थे। कुछ दिन वह वहां रहा। अपने परिवार की भूली बिसरी कड़ियां ढूंढता रहा और सम्बन्धियों की आवभगत तथा आत्मीयता पाता रहा। परंतु वह अधिक देर वहां न रह सका। पंजाब की गरमी से व्याकुल हो, राहत पाने के लिए वह पहाड़ों की ओर मुड़ा और इस प्रकार मनाली पहुंच गया। यहां कुछ समय उसने आनन्द से बिताया, फिर रोमांच और साहस के लिए किसी दुर्गम स्थान में जाने का निर्णय किया। इस के लिए उसने लाहुल की मयाड़ घाटी को चुना।

मयाड़ घाटी में उसे वह सब कुछ मिला जिसकी उसे चाह थी। प्रकृति के अद्भुत विभिन्न रूपों को देख वह रोमांचित हो उठा। तंग घाटी में सीधी उठती पहाड़ियां, ग्लेशियारों के नीचे बहती नदी, हिमखण्डों को काट कर बना रास्ता, जल से भरपूर तीव्र गति से बहते नाले, घने हरे वन, धूल और कोलाहल से रहित स्वच्छ वातावरण, सभी ने उसका मन मोह लिया। इस प्रकार बहुरंगी प्रकृति को निहारते हुए वह मयाड़ घाटी पार कर गया। अन्तिम गांव खंजर से आगे कोई बस्ती न थी परन्तु वहां उसे प्रकृति का और भी लुभावना रूप देखने को मिला। मीलों लम्बा, हरी घास का मैदान जिसमें अनगिनत रंग बिरंगे फूल खिले थे। इस मैदान को स्थानीय लोग थान पटन कहते हैं। वह इस दृश्य को देख इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी डायरी में लिखा, यह मेरा सौभाग्य ही था कि मैं यहां आया और प्रकृति के विविध रूप देख सका। यहां आकर मुझे अनन्त शान्ति मिली। मुझे विश्वास है कि मेरी मृत्यु के पश्चात यदि मेरी राख को यहां बिखेरा जाए तो मेरी आत्मा को भी अनन्त शान्ति मिलेगी। मैं अब लौट रहा हूं परंतु मेरा मन यहीं रह गया है।

इस यात्रा ने उसे साहस, उत्साह और स्फूर्ति से भर दिया। इंगलैंड लौटने पर उसने अपने परिवार के विरोध पर भी अपनी प्रेयसी मारिया से विवाह कर लिया। मारिया भी इंगलैंड में ही बसे एक भारतीय परिवार से थी। वह स्वाभिमानी और मुंह फट होने के कारण सुरेश के परिवार में घुल मिल न सकी। घर में कलह रहने लगी जिससे बचने के लिए सुरेश ने अपना स्थानान्तरण दूर कर लिया। मारिया भी अपने पति के साथ चली गई। इससे सारे विवादों को भी विराम मिल गया।

नये स्थान और अपरिचित लोगों के बीच बसना एक अनूठा अनुभव था। अपने काम तक सीमित रहने वाले लोगों से परिचय बढ़ाना कठिन था। अतः समय बिताने के लिए मारिया ने भी नौकरी ढूंढ ली। जीवन की गाड़ी चल निकली। सुखद पलों में पता ही नहीं चलता कि समय कब बीत गया। तीन वर्ष बीतने पर भी ऐसा लगता था कि कल की बात है। भला ऐसे में दूर रहने वाले सम्बन्धी भी कैसे याद रहते। परंतु भाग्य सदा एक समान नहीं रहता। जीवन धूप–छांव है। एक दिन सुरेश अपनी कार में कार्यालय जा रहा था कि दुर्घटना हो गई। वह घटनास्थल पर ही मारा गया। परदेश में मारिया अकेली घबरा गई। उसने अपने ससुराल वालों से संपर्क किया। रमेश, सुरेश का बड़ा भाई कुछ सम्बन्धियों के साथ सहायता के लिए पहुंचा। सारी औपचारिकताएं पूर्ण कर वह सुरेश के शव के साथ लौट आया। साथ बिलखती हुई मारिया आई। अन्तिम संस्कार पर फिर विवाद खड़ा हो गया। परिवार सुरेश का अंतिम संस्कार यहां की रीति से करना चाहता था परंतु मारिया न मानी।

क्रिश्चन होते हुए भी मारिया ने सुरेश का संस्कार हिन्दू रीति से किया और उसकी राख को पोलीथीन में बन्द कर अल्मारी में रख दिया कि जब वह भारत जाएगी, गंगा में विसर्जित कर देगी। इसके पश्चात वह सुरेश का सामान ले आई और अपने एक मित्र के साथ रहने चली गई। उसके इस व्यवहार से परिवार वाले दुखी हुए, परंतु कुछ न कर सके। नये घर में मारिया के साथ एक विचित्र घटना घटी। वह सोई थी कि किसी अज्ञात शक्ति ने उससे कहा कि वह सुरेश की डायरी को पढ़े और उस अनुसार राख को विसर्जित करे। वह उठ कर बैठ गई।

इधर–उधर देखा फिर उसे स्वप्न समझ कर सो गई। परंतु जैसे ही उसकी आंख लगने लगी उसे फिर किसी अज्ञात शक्ति ने यही बात कही। इस बार वह घबरा गई। उसनें बिजली जलाई और मन ही मन प्रार्थना कर आंखें बंद कर लेट गई। अज्ञात शक्ति ने उससे पुनः आग्रह किया कि वह घबराये नहीं, अपितु वैसा करे जैसा उसे कहा जा रहा है। मारिया डर के मारे पसीना, पसीना हो गई, परंतु फिर भी उसने साहस कर अपने मित्र को जगाया और उसे सारी बात बताई। दोनों ने मिलकर सुरेश की डायरी सामान से ढूंढ निकाली और उसके पृष्ठ बदलने लगे। उन्हें ऐसा लगा कि डायरी के पृष्ठ अपने आप बदलते जा रहे हैं। मयाड़ घाटी के वर्णन पर पृष्ठ ठहर गए। यह डायरी के उसी भाग को पढ़ने का संकेत था। उन्होंने वहीं से पढ़ना आरम्भ किया। फूलों की घाटी में राख के विसर्जन की मृतक की इच्छा जान कर वे हैरान हो गए। अब उन्हें समझ में आया कि वह अज्ञात शक्ति सुरेश की आत्मा है और वह उनसे क्या चाहती है। प्रातः मारिया और उसका मित्र चर्च गए। दोनों ने सुरेश के नाम से मोमबत्तियां जलाईं और आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना की। साथ बचन दिया कि धन का प्रबन्ध होते ही वे भारत जा डायरी के अनुसार फूलों की घाटी में राख को बिखेर देंगे।

दो सप्ताह तक इस के पश्चात कोई घटना न घटी परंतु अब रमेश के साथ वही घटना दोहराई जाने लगी। अज्ञात शक्ति उससे कहती कि वह मारिया की सहायता करे। पहले रमेश ने समझा कि उसे सुरेश की अचानक मृत्यु के आघात के कारण अन्तर वेदना यूं प्रकट हो रही है। परंतु बार–बार हर रात्रि यही घटना दोहराई जाने लगी तो वह घबराया और मारिया से संपर्क साधा। मारिया ने जब उसे बिस्तार से सारी घटना का विवरण दिया तो वह स्तब्ध रह गया। उसने परिवार के अन्य सदस्यों से मंत्रणा की और पूर्ण व्यय का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया ताकि राख का विसर्जन जल्दी हो सके और आत्मा को शान्ति मिले। उसने भी भाई की आत्मा की शान्ति के लिए घर पर यज्ञ करवाया। यज्ञ के पश्चात निर्णय लिया गया कि पांच व्यक्ति रमेश तथा उसका मित्र, मारिया और उसका मित्र और एक सुरेश का मित्र राख लेकर भारत में फूलों की घाटी को जाएंगे।

उसी दिन से यात्रा की तैयारी आरम्भ हो गई। सर्व प्रथम घाटी की पूर्ण जानकारी ली गई। व्यय का अनुमान लगाया गया। आवश्यक सामान इकट्ठा किया गया और अगस्त मास में पांचों सुरेश की राख लेकर फूलों की घाटी के लिए इंग्लैंड से चले आए। सुरेश भी इसी मास भारत आया था। उन दिनों मयाड़ घाटी में भारी बाढ़ आई थी जो यहां के लिए सामान्य बात थी। जिससे सड़क टूट गई और भारी हानि हुई थी। बस सेवा केवल 15 किलोमीटर तक ही उपलब्ध थी। इससे आगे दो पुल बह जाने के कारण यात्रा पैदल थी। परंतु कोई भी बाधा उन्हें थान पटन पहुंचने से न रोक सकी। मैदान की शोभा देख वे भी दंग रह गए। हरी भरी घास के बीच अनगिनत रंग–बिरंगे फूल खिले थे। पृष्ठ भूमि में हिमाच्छादित चोटियां और सामने अनन्त को छूता मैदान एक अलौकिक दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। रमेश चाहता था कि मैदान के मध्य तक जाकर राख विसर्जित की जाए। परंतु यहां भी मारिया न मानी। उसने कहा कि वह इतनी थक गई है कि आगे नहीं जा सकती। फिर भी रमेश अपने मित्र के साथ कुछ किलोमीटर आगे गया जहां बौद्धों का एक छोरतेन था। उस की ओट में बैठ सुरेश की आत्मा के लिए प्रार्थना की और गीली आंखें लिए लौट आया।

शाम का धुंधलका पसरने लगा था। पांचों मैदाने से थोड़ी ऊंचाई पर गए। ज्यूं ही उन्होंने राख मुट्ठियों में ली अचानक तेज़ हवा चलने लगी जो मुट्ठियों के खुलते ही राख को दूर दूर तक ले उड़ी और उसे अनन्त फूलों के मध्य बिखेर दिया। बारी बारी सभी ने मृतक को श्रद्धांजलि अर्पित की और उसकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना की। प्रार्थना के समय हवा घाटी में गर्जन करती हुई चलने लगी जिसमें अचानक गुडबाई (शुभ विदा) जैसा अस्पष्ट शब्द उभरा, सुनकर सब एक दूसरे को प्रश्न सूचक दृष्टि से देखने लगे परंतु कुछ न बोले। सभी ने अनुभव किया कि सुरेश की आत्मा सारा समय आस पास ही थी। मन में ढेरों प्रश्न लिए सभी अपने अपने तम्बुओं को लौट गए। थोड़ी देर में सब शान्त हो गया। मन्द–मन्द पवन फिर चलने लगी थी।

द्वन्द्व की समाप्ति है संकल्प की पूर्णता

– सीता राम गुप्ता

नया साल आता है और चला जाता है। हर नये साल का हम उत्साहपूर्वक स्वागत करते हैं तथा नववर्ष की पूर्व संध्या पर आगामी वर्ष को बेहतर बनाने के लिए नये–नये संकल्प लेते हैं। मेरे ये पूछने पर कि इस साल नए वर्ष के अवसर पर आप क्या नया संकल्प ले रहे हैं, मेरे एक मित्र बोले कि मेरे संकल्प कभी पूरे नहीं होते अतः मैंने संकल्प लेना ही छोड़ दिया है। कमोबेश हम सब के साथ यही होता है। या तो हम संकल्प लेते ही नहीं और यदि ले भी लें तो वे पूरे नहीं हो पाते। क्या कारण है हमारे संकल्पों के अधूरा रह जाने का?

हमारे संकल्पों के पूरा न होने का एक कारण तो यही है कि हम अपने संकल्प के प्रति आश्वस्त ही नहीं होते अर्थात् हमें विश्वास ही नहीं होता कि हमारा संकल्प पूरा हो जाएगा और इस प्रकार हम एक विरोधी संकल्प ले लेते हैं कि ''मेरे संकल्प कभी पूरे नहीं होते''। यह भी एक संकल्प है लेकिन नकारात्मक और अनुपयोगी संकल्प। यदि आप चाहते हैं कि आपके संकल्प पूरे हों तो सबसे पहले यही संकल्प लीजिए कि मेरे सभी सँकारात्मक संकल्प या विचार सदैव पूर्ण होते हैं। यहां एक बात और भी महत्त्वपूर्ण है और वो ये कि हम जाने–अनजाने हर क्षण नये–नये संकल्प लेते ही रहते हैं। हमारे मन में उठने वाला हर विचार एक संकल्प ही तो है। यदि हम अपने अंदर ये विश्वास पैदा कर लें कि हमारे सभी सकारात्मक विचार या संकल्प पूर्णता को प्राप्त होते हैं तो जीवन में एक क्रांति आ जाए। हमारे असंख्य उपयोगी विचार पूर्ण होकर हमारे जीवन और पूरे समाज को बदल डालें। अतः सबसे पहले अपने संकल्प की पूर्णता के प्रति अपने मन में पूर्ण विश्वास पैदा कीजिए।

अब आपको अपने संकल्पों के पूर्ण होने के विषय में कोई संदेह नहीं रहा और आप पूरे जोशो–ख़रोश के साथ कुछ महत्त्वपूर्ण संकल्प ले लेते हैं लेकिन फिर भी निराशा ही हाथ लगती है। आखिर क्यों? हम सबमें अच्छे संकल्प लेने की क्षमता है और हम उपयोगी संकल्प ले भी लेते हैं अथवा उपयोगी विचारों का चुनाव कर भी लेते हैं लेकिन क्या हम किसी संकल्प को लेने के बाद अथवा किसी उपयोगी विचार का चुनाव करने के बाद उसकी उपयोगिता के तत्त्वों को अक्षुण्ण रख पाते हैं? शायद नहीं। विचार ही तो है, कमज़ोर पड़ जाता है। या तो संकल्प की उपयोगिता पर ही संदेह होने लगता है अथवा संकल्प के विरोधी विचार ही सिर उठाने लगते हैं और द्वन्द्व शुरू हो जाता है।

द्वन्द्व की स्थिति में हमारे संकल्प की भावना पर बार–बार प्रहार होता है और मूल संकल्प कब और किस रूप में प्रभावी होकर वास्तविकता ग्रहण करता है हमें पता ही नहीं लगता। जीवन में द्वन्द्व या शंका के कारण परस्पर विरोधी विचार उत्पन्न होते रहते हैं।

विचार वास्तविकता का मूल है। पहले एक विचार ने स्वरूप ग्रहण करना आरंभ किया ही था कि दूसरे विचार ने दूसरा स्वरूप ग्रहण करना प्रारंभ कर पहले विचार को विकृत अथवा नेस्तोनाबूद कर दिया। अब दूसरे विचार को तीसरे ने और तीसरे विचार को चौथे ने धराशायी कर दिया। हर विचार हर इच्छा अथवा हर संकल्प के साथ यही क्रम जीवनभर चलता रहता है। हम जीवनभर अच्छा सोचते हैं, बार–बार शुभ संकल्प लेते हैं लेकिन द्वंद्व के कारण हमारी अच्छी भावना या विचार टिक ही नहीं पाते अर्थात् संकल्प वास्तविकता को प्राप्त नहीं हो पाते। इस प्रकार जीवन में विभिन्न इच्छाओं, संकल्पों

अथवा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए द्वंद्व की समाप्ति अनिवार्य है। द्वंद्व की समाप्ति ही मनोवांछित उपयोगी जीवन जीने की अनिवार्य शर्त है तथा जीवन जीने की कला भी है। यहां अपनी सोच में थोड़ा दिशांतरण अथवा डाईवर्सिफिकेशन करना होगा अर्थात् एक और सोच विकसित करनी होगी और वो ये कि कोई भी नकारात्मक या विरोधी सोच मेरी सकारात्मक विचार प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करती। इसे इस प्रकार भी स्वीकार किया जा सकता है कि केवल सकारात्मक सोच ही मेरे जीवन को प्रभावित करती है। यानि द्वन्द्व से उत्पन्न नकारात्मक या विरोधी सोच के विरुद्ध उसकी विरोधी एक अन्य सोच का विकास। यह एक एंटी वायरस डिवाइस की तरह काम करेगी। यह हमारे संकल्प अथवा उपयोगी मूल विचारों को सुरक्षित रखने और उसे वास्तविकता में बदलने में सहायक एक विशुद्ध सकारात्मक विचार है।

जीवन में इच्छाओं का दमन करने की आवश्यकता नहीं है। इच्छाओं के अभाव में इस भौतिक शरीर का प्रयोजन ही क्या हो सकता है? जीवनोपयोगी, समाजोपयोगी इच्छाओं को उत्पन्न होने दीजिए और उन्हें वास्तविकता में परिवर्तित कीजिए लेकिन इसके लिए इच्छा के विरोधी भावों का त्याग भी अनिवार्य है। अब इच्छा के विरोधी भावों को मन में आंने से कैसे रोका जाए?

हम डॉक्टर या न्यूट्रीशियन से परामर्श करके उचित आहार–विहार का चार्ट बनाकर उसका पालन करते हैं। ब्यूटी–पार्लर में जाकर चेहरे की तथा दूसरे अंगों की लिपाई–पुताई करा लेते हैं और स्थाई परिवर्तन के लिए उपलब्ध है कॉस्मेटिक सर्जरी। कपड़ों के चुनाव और डिज़ाइनिंग के लिए फैशान डिज़ाइनर की सेवाएं उपलब्ध हैं। शारीरिक सौष्ठव के लिए जिम हाज़िर है। हर क्षेत्र में प्रशिक्षण की व्यवस्था सुलभ है तो क्या विरोधी भावों के त्याग के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी संभव है? अवश्य संभव है। जीवन में यही एक ऐसा क्षेत्र है जिसके प्रशिक्षण की परमावश्यकता है लेकिन हम इसी क्षेत्र की अधिकाधिक उपेक्षा करते हैं। क्योंकि इस प्रशिक्षण में बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती, अतः यह प्रशिक्षण ही नहीं लगता या दिखाई देता।

विचारों का उद्गम मन है अतः मन के उचित प्रशिक्षण द्वारा न केवल उपयोगी विचारों का बीजारोपण संभव है अपितु साथ ही विचारों के विरोधी भावों का बीजारोपण रोकना भी संभव है। इसके लिए मन की साधना अनिवार्य है। मन की साधना अर्थात् मन को विकारों से मुक्त कर उसमें उपयोगी विचार या सुविचार डाल कर उस छवि को निरंतर दृढतर करते जाना। यही ध्यान अथवा मेडिटेशन है। पूरी ऊर्जा को एक ही केन्द्र बिन्दु पर एकत्र करना। ध्यान द्वारा अपेक्षित उपयोगी विचार, इच्छा अथवा संकल्प को कल्पनाचित्र या चाक्षुषीकरण (विजुवलाइज़ेशन) द्वारा लगातार दृढ़तर करके वास्तविकता में परिवर्तित करने की प्रक्रिया में विरोधी भाव उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ध्यान अथवा मेड़िटेशन की सैंकड़ों विधियां मौजूद हैं। किसी भी विधि से अभ्यास करें लाभ होगा ही।

नववर्ष में आप अच्छे संकल्प लें और आपके संकल्प पूर्ण हों इसी कामना के साथ।

विलुप्ति के कगार पर पहुंचे हुए पटनी बोली के कुछ शब्द

– विकास ओथड़बा

1 **अभ्रुग** – काटने के पश्चात खेत में बचे फसल के ठूंठ।

2 **आःश्र** – फसल की मंडाई से पहले, शागुण के पश्चात प्रसाद के रूप में दिया जाने वाला भुने हुए जौ के दाने इत्यादि।

3 **कुरुल्ज़**– भेड़ बकरियों के बाड़े में एक कोने पर मेमनों को अलग रखने के लिए बनाया गया छोटा सा बाड़ा।

4 **छिण्णः**– घर के मुख्य द्वार के तुरंत पश्चात आने वाली गली।

5 **छोज़ोम**– पानी ढोने के लिए लकड़ी का बना ढोल जिसे जंज़ीर के सहारे पीठ पर उठाया जाता है।

6 **छ़ङ** – देवदार की लकड़ी का तैलीय भाग जिसे आग जलाने तथा रोशनी के लिए प्रयोग किया जाता था।

7 **छ़कुटि** – नमक रखने के लिए लकड़ी की बनाई गई छोटी सी सन्दूकड़ी जिस पर बढ़िया नक्काशी भी की होती है।

8 **ड्रमिग्** – पेड़ की सूखी शाखाओं को जोड़कर बनाया गया दरवाज़ा।

9 **डाठा** – पत्थर के बड़े–बड़े स्लेटों तथा लकड़ी के फ्रेमों की मदद से बनाया गया बड़ा सा बक्सा जिसमें अनाज का भण्डारण किया जाता है।

10 **थमशरः**– लकड़ी के खम्भे और बरोर (बीम) के बीच सहारे के लिए रखा गया लकड़ी का पंखनुमा बड़ा सा टुकड़ा जिस पर पूरे छत का भार रहता है।

11 **दिर** – लकड़ी का बना हुआ लम्बा सा टुकड़ा जिसे मुख्य द्वार को बन्द करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसे दीवार में रखे गए सुराख में एक ओर से दूसरी ओर सरकाकर बन्द किया जाता है।

12 **हरल** – जानवरों के खुले बाड़े के द्वार पर दो मोटे डंडों की मदद से तख्तों को टिकाकर बनाया गया अस्थाई दरवाज़ा। इसमें वे मोटे डंडे दीवार में बने छेद में डाले होते हैं और बीच में तख्ते डाले गए होते हैं

13 **ऱ्हेन्ड्रः**– लकड़ी का बना टब जिसे बच्चों या शिशुओं को नहलाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

लाल चन्द प्रार्थी की दृष्टि में जमलू और मलाणा

– तोबदन

मलाणा कुल्लू ज़िला में ब्यास और पार्वती नदियों के मध्य स्थित पर्वत शृंखला की गोद में बसा एक गांव है जो एक प्राचीन संस्कृति का वाहक है। यहां चार रास्तों से होकर चट्टानों के बीच से होते हुए कम से कम पन्द्रह किलोमीटर का कठिन रास्ता पैदल चलकर ही पहुंचा जा सकता था।

मलाणा केवल कुल्लू ही नहीं बल्कि पूरे देश में एक ऐसा गांव है जिसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति है और यह दूसरों से भिन्न है। देश–विदेश के अनेक विद्वान इसके अध्ययन के लिए आकर्षित हुए हैं और काफी साहित्य भी इस विषय में रचा जा चुका है। इसमें लाल चन्द प्रार्थी का 'कुलूत देश की कहानी' भी शामिल है जिसमें उन्होंने मलाणा के विषय में विस्तृत जानकारी दी है। हिमाचल की संस्कृति के प्रति प्रार्थी के प्रेम से सभी भली भान्ति अवगत हैं। वैसे वे स्वभाव से कवि अथवा शायर रहे हैं और उनका यह गुण उनके गद्य रचनाओं में भी झलकता है। मलाणा के विषय में उनका योगदान अन्य लेखकों से थोड़ा भिन्न है और इसका एक विशेष कारण है।

लाल चन्द प्रार्थी की जन्म स्थली कुल्लू की प्राचीन राजधानी नग्गर में स्थित है। ब्यास घाटी में स्थित यह मलाणा के निकट पड़ने वाले गांवों में से एक प्रमुख गांव है। यहां से एक रास्ता चन्द्रखणी जोत से होकर मलाणा पहुंचता है। मलाणा के लोग यहां लगातार आते रहते हैं, यहां के मेलों में भी भाग लेते हैं और नाचते हैं। अतः प्रार्थी जी को मलाणा के विषय में प्रत्यक्ष ज्ञान है। इस दृष्टि से मलाणा के विषय में उनका योगदान महत्वपूर्ण है।

यहां हम मलाणा के विभिन्न पहलुओं पर प्रार्थी जी के दृष्टिकोण का अवलोकन करेंगे जैसे मलाणा गांव, मलाणा का कुल्लू के अन्य क्षेत्रों से सम्बन्ध, यहां की भाषा, देवता जमलू तथा यहां की बहुचर्चित गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली।

मलाणा की प्राचीनता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि यद्यपि मलाणा जनपद एक छोटा सा गांव है परंतु यह महर्षि जमदग्नि के समय से अब तक ठीक उसी तरह चला आ रहा है। जमदग्नि को स्थानीय भाषा में जमलू कहा जाता है और कुल्लू भर में इसके बारह जगहों पर बारह देवगृह मौजूद हैं। देवता के मंदिर में अकबर बादशाह की सोने की मूर्ति है।

यह सर्वविदित है कि मलाणा की अपनी प्रशासनिक विधि है जो कि गणतन्त्रात्मक है और इसके राज्य के मुखिया आध्यात्मिक जमलू देवता हैं कुलूत देश के मलाणा गांव में आज भी गणतन्त्रात्मक प्रणाली प्रचलित है। यह प्रणाली प्राचीनतम है और पूरे विश्व में अद्वितीय है। यह ऋग्वेदिक काल से इसी रूप में चला आ रहा है। मलाणा में इसलिए सुरक्षित रह पाया क्योंकि यह गांव हिमालय की घाटियों में आबाद है जहां पहुंचना आसान नहीं है। इसको देखने और समझने के लिए अमरीका और इंग्लैंड से शोधकर्ता आए हैं और अपने–अपने विचार प्रकट किए हैं।

प्रार्थी जी बताते हैं कि मलाणा में पांच सौ घर हैं और दो भागों में विभक्त हैं जिसमें चार चुग (भाग) हैं। इनसे प्रतिनिधि चुने जाते हैं परंतु निर्वाचन से नहीं, एकमत से होता है। इस जनपद का सारा काम स्वयं देवता जमलू के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में चलता है। इस जनपद को देवता जमलू का ही राज्य माना जाता है। सारा गांव और उसकी ज़मीन देवता के नाम है और हरेक निवासी देवता के मुज़ारे के रूप में रहना चाहता है। इस जनपद में नियमित रूप से अप्पर और लोअर दो सदन हैं। अप्पर हाउस अर्थात कौंसिल को ज्येष्ठांग कहते हैं और लोअर हाउस को कोर

कहा जाता है। इस कोर या आम सभा में गांव के हरेक घर का मुखिया सदस्य होता है और वोट देने का अधिकार वैसे ही मिलता है। वोट देने वालें को चाकर तथा दूसरों को हूद कहा जाता है। कोर के सत्तर–अस्सी सदस्य प्रायः होते हैं। ज्येष्ठांग के ग्यारह सदस्य चुने जाते हैं जिनमें से तीन प्रतिनिधि यथा बड़ा पुजारी, गुर और कर्मिष्ठ हैं। देवता के बाद पुजारी इस जनपद का सबसे बड़ा अधिकारी है। ये तीनों प्रतिनिधि जीवन में एक बार चुने जाते हैं।

ज्येष्ठांग के शेष आठ सदस्य प्रत्येक चुग से चुन कर लिए जाते हैं। उनका चुनाव प्रायः एक मत से होता है। प्रायः इन्हें चार–पांच वर्ष काम करने का अवसर दिया जाता है।

मलाणा की भाषा के बारे में वे कहते हैं कि इस अकेले गांव की भाषा को कणाशी कहते हैं। यह इतनी भिन्न है कि संसार के किसी भाषा से इसका मेल मालूम नहीं होता है। यद्यपि कोई शब्द इसमें तिब्बती, बुशहरी और मुण्डा भाषा के जान पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त इस भाषा के रंग रूप अपने ही हैं जिसे कोई दूसरा समझ नहीं सकता है। कुल्लू भर में लोग इसे देवताओं की भाषा कहते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रार्थी जी के वर्णन में सार्थकता और मौलिकता का भाव दृष्टिगोचर होता है।

पृ0 32 से आगे .....

मंदिरों तथा विहारों का निर्माण करवाया अपितु कर्ग्युदपा संप्रदाय के कई मठ तथा मंदिर बनवाए गए। यह स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता कि कौन सा मंदिर और मठ किसने बनवाया। इतना अवश्य है किन्नौर, लाहुल– स्पीति में इन मंदिरों को बनाना 11वीं शताब्दी से शुरू हुआ। परंतु कुछ मंदिरों के गुरु पद्मसंभव, गुरु रिम्पोछे, आठवीं सदी से भी जोड़ते हैं। जैसे इन मंदिरों में लाहुल के गुरु घंटाल और त्रिलोकनाथ हैं और कई लोग त्रिलोकनाथ के बारे में इसे महाराजा हर्ष वर्धन के आगमन पर बनाया गया बताते हैं। गुरु पद्मसम्भव 8वीं सदी में किन्नौर के चंगो, लियो और मण्डी का रिवालसर के बौद्ध मंदिर तथा रिनचेन ज़ङपो के बारे में कहा जा सकता है कि यह सबसे प्रसिद्ध मठ ताबो स्पीति में स्थित है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे पता चलता है कि यह गोम्पा 900 साल पहले बनवाया गया था। अभिलेख से यह भी पता चलता है कि इस मंदिर के निर्माण में इन लोगों ने सहयोग दिया। इस लेख से यह भी पता चलता है कि लद्दाखी शासक जङछुब्ब सेम्पा ने बनवाया था और 46 साल के बाद गुगे का राजा ज़ङछुव सामूनदपा ने बनवाया और जङछुव ओद ने इसकी मुरम्मत की। स्पीति का दूसरा प्राचीन बौद्ध विहार ढंकर है। पुराने ज़माने में यह स्पीति की राजधानी भी रही। यहां का बौद्ध विहार 12750 फुट ऊंचे चट्टानी शिखर पर मौजूद है। लामाओं का कथन है कि यह विहार ताबो मंदिर से भी पुराना ही नहीं बल्कि तिब्बती राजा स्रोंगचन गम्पो से भी पहले का है। कई हमलावरों ने इस मठ को कई बार लूटा और आखिरी बार डोगरा युद्ध के वक्त इसे तहस नहस किया था। डोगरों ने लगभग स्पीति के सभी मठों को लूटा। सिर्फ ताबो ही बचा रहा। ढंकर में दो मठ हैं एक में गुरु पद्मसम्भव का वज्रधर तारा, अमिताभ वगैरों की मूर्तियां हैं। इससे ऊपर वाले में शाक्या मुनि तथा दीगर बौद्ध देवी–देवताओं के चित्र रखे गए हैं। 'की' बौद्ध विहार स्पीति का सबसे बड़ा विहार है। गुरु लोचा रिम्पोछे इस समय 17वां अवतार के रूप में हैं। यह मठ एक ऊंची पहाड़ी पर स्थित है। कहते हैं कि यह मंदिर और मठ रंगरीग गांव में था। जहां इसकी स्थापना 11वीं शताब्दी में हुई। 600 साल पहले लद्दाख की तरफ से आए हमलावरों ने इसे नष्ट कर दिया था। परंतु आठवीं सदी के आरम्भ में इस मठ को गांव में स्थापित किया गया। 1841 ई0 के दौरान डोगरा हमला के वक्त मुसलमान सेनापति गुलाम खां ने इसे जला दिया। परंतु लामा लोग कीमती और बहुमूल्य थंकों को लेकर पहाड़ों की तरफ भाग गए। की गोम्पा का निर्माण किसी असूल और नियम से नहीं बना हुआ है। शिखर पर बने भवनों में पांच बौद्ध मंदिर हैं।

मुख्य लामा का कक्ष और कुछ भण्डार गृह इसके मुख्य भाग हैं। प्रत्येक मठ में भगवान बुद्ध की मूर्ति है।

मिला रेपा की जीवनी : पीठ का वह पहला घाव

(पापावरण निःशेष शुद्धि लीला)

– ठिनले नमज़ल एवं अजेय

गतांक – 24 में आप ने पढ़ा––

'थू', अभिचार आदि विद्याओं का अभ्यास करते–करते मिला ऊब चुका था और सद्धर्म की ओर अग्रसर होना चाहता था। गुरु से इसकी अनुमति मांगी। गुरु ने उसे चङरुङ के सिद्ध लामा रोङ तोन ल्हगा के पास भेजा जो उसे अपना शिष्य स्वीकार कर लेता है। लेकिन अहंकार के वशीभूत मिला को प्रगति न करते देख रोङ तोन ने उसे लो डाग् डोवोलुङ गोन्पा में महानुवादक मरपा के पास जाने का परामर्श दिया। मरपा का नाम सुनते ही मिला का मन स्वतः प्रफुल्लित एवं रोम–रोम प्रकम्पित हो गया। उधर गुरु मरपा एवं उनकी पत्नी ने भी अलग–अगल अद्भुत स्वप्न देखे जिन में एक विशिष्ट अन्तः साम्य था। मरपा अपने एक खेत में जुताई करने के बहाने जाते हैं, उसी खेत में मिला की पहली भेंट उनसे होती है। फिर मरपा ने उसे अपने घर बुलाया, न केवल उसे अपना शिष्य स्वीकार किया अपितु गुरु–गृह में वास करने की भी अनुमति दे दी। और मिला गुरु की सेवा में लीन हो गया। अब आगे .....

ल्हडोग् घाटी में भिक्षाटन करते हुए मैंने इक्कीस खल[1] जौ इकट्ठा किया। उस से चौदह खल के बदले में एक बड़ा ताम्र पात्र खरीदा। उस पात्र के चार हत्थे थे। बाहर भीतर उसमें कोई मैल अथवा ज़ंग न लगा था। एक खल जौ बेचकर मैंने मांस एवं छङ् की व्यवस्था की। बाकी बचा अनाज एक बड़ी बोरी में भर कर पीठ पर उठा लिया और ऊपर से ताम्र पात्र लाद कर गुरु जी के घर की ओर चल पड़ा। घर पहुंच कर जब बोझा नीचे रख रहा था तो थकावट के करण बोझा छूट गया जिसकी धमक से मकान हिल गया। भीतर गुरु जी भोजन कर रहे थे।

क्रुद्ध होकर कहने लगे – नन्हें भिक्षु, बड़े ताकतवर लगते हो! क्या जादू के बल से हमें भी मलबे के नीचे दबा देने की मंशा है? इस बोझ को फौरन यहां से बाहर निकालो। ऐसा कहते हुए वे अनाज की बोरी पर लात मारने लगे। जब मैं बोरी को घसीट कर बाहर निकाल रहा था तो विचार आया कि गुरु जी अत्यन्त उग्र स्वभाव के हैं। अतः सेवा सुश्रुषा करते हुए मुझे उनके इस स्वभाव को ध्यान में रखते हुए व्यवहार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त और कोई दुर्भावना उनके प्रति मेरे मन में नहीं आई।

अन्दर लौट कर ताम्र पात्र को भेंट स्वरूप गुरु के सम्मुख रखते हुए मैंने साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने भेंट को अपने हाथों से छुआ। आंखें मूंद ली और क्षण के लिए ध्यान मग्न हो गए। फिर उनके आंसू छलक आए। "अति शुभ लक्षण"! मैं इन्हें महा पंडित नरोपाद को समर्पित करता हूं!" गुरु मारपा ने भेंट को दोनों हाथों में उठाया! उनके हत्थे झनझना उठे! फिर छड़ी की चोट से पात्र को बजाया। दिव्य झंकार गूंज उठी। फिर पात्र को पूजा गृह में ले गए और पवित्र दीप के लिए घी से भर दिया।

उस समय मेरा मन उद्विग्न हो रहा था और मेरी काया सद्धर्म की प्यास से संतप्त थी। मैंने गुरु जी से बार–बार निवेदन किया कि मुझे धर्मोपदेश दें। गुरु जी ने कहा – "ऊं" तथा "चङ्" क्षेत्र से मेरे पास बहुत श्रद्धालु आते हैं। लेकिन मार्ग में "यर डोग् तक् लुङ् तथा लिङ के निवासी उन्हें लूट लेते हैं। वे मेरे पास पहुंच नहीं पाते और इस तरह सद्धर्म से वंचित रह जाते हैं। तुम इन दोनों क्षेत्रों पर अपने जादू से ओलावृष्टि करवाओ। उनकी फसलें नष्ट कर दो। यह भी धर्म का ही काम है। उसके बाद मैं तुम्हें सद्धर्म का उपदेश दूंगा।"

मैंने उन स्थानों पर भीषण ओलावृष्टि करवाई और पुनः गुरु के चरणों में जाकर धर्मोपदेश की इच्छा व्यक्त

की। गुरु जी ने कहा – ''तीन दाने बरसा कर (ओलावृष्टि) तुम समझते हो कि तुमने कोई बड़ा कारनामा कर दिया है? वह महान ज्ञान मैं तुम्हें इतनी आसानी से कैसे दे दूं जो मैंने स्वयं भारत जाकर न जाने कैसी–कैसी कठिनाइयां झेलकर प्राप्त किया। यदि तुम्हें सचमुच ही वह ज्ञान चाहिए तो जाओ पहले ''ल्हडोग्'' के पहाड़ी जनों का सर्वनाश करो। क्योंकि वे मेरे ''ञल् लोरो'' से आने वाले शिष्यों को पीटते हैं। उन्होंने मुझे भी अनेक बार सताया है और मेरा उपहास किया है। तुम जो स्वयं को ''थू'' की विद्या में पारंगत समझते हो, जाओ अपनी शक्ति का प्रदर्शन करो। यदि तुम्हारा जादू प्रतिफलित हुआ तो मैं तुम्हें महापंडित नरोपाद का उपदेश दूंगा जो इसी शरीर और इसी जीवन में बुद्धत्व प्रदान कर सकता है।''

मेरे 'थू' के प्रभाव से 'ल्हाडोग्' के पहाड़ीजनों में परस्पर युद्ध छिड़ गया। बौखलाए हुए पहाड़ी जन एक दूसरे को तलवारों से काटने लगे। यह देख कर गुरु जी प्रभावित हो गए। – वाकई तुम तो 'थू छेन' (महान जादूगर) हो।' उसी दिन से मेरा नाम महान जादूगर पड़ गया।

यह सुनकर मुझे हिम्मत आई और फिर से उपदेश की गुहार लगा बैठा।

''अरे, नादान बच्चे! यह ज्ञान मैंने जान जोखिम में डालकर भारत से यहां पहुंचाया है। इसे प्राप्त करने के लिए मैंने अपनी सारी संपत्ति बेच दी। यह ज्ञान स्वयं खेचर डाकिनी के मुख से निकले भाप के समान प्रत्यक्ष एवं जीवन्त है। तुम चाहते हो कि यह असाधारण ज्ञान अपने संचित पापों के पुरस्कार के रूप में तुम्हें दे दूं? तुमने इसे कोई मज़ाक समझ रखा है, यदि यह मज़ाक भी है तो अतिश्योक्ति पूर्ण है। शुक्र मानो कि मुझे हंसी आ रही है। मेरी जगह कोई और होता तो तुम्हें जान से मार डालता। जाओ 'यरडोग्' क्षेत्र की फसलों की क्षतिपूर्ति करो। 'ल्होडग्' के पहाड़ी जनों के जख्म भर दो। समस्त मृतकों को पुनर्जीवित करो, तभी मैं तुम्हें शिक्षा दूंगा। यदि ऐसा न कर पाओ तो मेरे पास लौट कर आने की आवश्यकता नहीं है।''

गुरु जी की फटकार से मैं आहत हुआ। मन उचाट हो गया और मैं रोने लगा। गुरु जी ने मुझे सांत्वना दी। सुबह गुरु जी स्वयं मेरे पास आए। 'कहा मैंने तुम्हारे साथ कुछ अधिक ही कठोर व्यवहार किया। पर इसे दिल पर मत ले लेना। धैर्य धरो और प्रतीक्षा करो। मैं तुम्हें अवश्य सिखाऊंगा। तुम में बहुत ऊर्जा है। मुझे अपने पुत्र 'दरमा दोदे' के लिए एक भवन का निर्माण करना है। मेरी सहायता करो। काम पूरा होने पर न केवल धर्मोपदेश दूंगा अपितु भोजनं एवं वस्त्र की व्यवस्था भी करूंगा।

''लेकिन मैं तब तक जीवित न रहा तो?'' मैंने आशंका प्रकट की।

''वह मेरी ज़िम्मेदारी रही। मेरा धर्म बड़बोला नहीं है। तुम में अपार उत्साह है। यदि तुम मेरे निर्देशों का पालन ध्यान और लग्न के साथ करोगे तो मैं यह भी बता दूंगा कि इसी जन्म में तुम्हें बुद्धत्व की उपलब्धि होगी कि नहीं। मेरी विद्या की परंपरा समस्त विद्याओं से अलग है।''

गुरु के आश्वासनों से मैं गद्गद् हो उठा। मैंने सहर्ष कहा, ''तो फिर आप भवन के प्रारूप का वर्णन करें।''

पूर्व दिशा में पर्वत के पास एक ऐसी जगह थी जहां गुरु मारपा के पूर्वजों ने भवन निर्माण न करने की प्रतिज्ञा ले रखी थी। गुरु जी ने उसी स्थान पर भवन निर्माण करने की आज्ञा दी। उनका विचार था कि इससे प्रतिज्ञा की अवहेलना भी नहीं होगी और साथ में मेरा पाप शोधन भी हो जाएगा।

मैंने निर्माण कार्य आरंभ कर दिया। भवन अभी आधा ही बना था कि गुरु जी ने आकर कहा। हमने बिना ठीक से विचार किए ही यह काम शुरू कर दिया है। अब इसे समूल नष्ट कर दो और सारी निर्माण सामग्री जहां से लाए थे वहीं पहुंचा दो। मैंने मिट्टी और पत्थर का एक–एक टुकड़ा यथा स्थान पहुंचाया।

उसके बाद वे मुझे पश्चिम दिशा में स्थित एक पर्वत के पास ले गए। हाथ से आकार बनाते हुए मुझे आदेश किया कि "अब इस तरह का एक भवन बनाओ।" मैंने निर्देशानुसार अर्द्धचन्द्रकार भवन बनाना शुरू कर दिया। जब वह आधा बनकर तैयार हो गया तो अचानक गुरू जी ने आकर कहा "इस से भी कुछ नहीं होने वाला है। इसकी भी सारी मिट्टी और पत्थर यथा स्थान पहुंचा दो।" मैंने आज्ञा का पालन किया।

फिर वे मुझे उत्तर दिशा में ले गए और कहा – "अवो थूछेन, कल मैं नशे में चूर था और गलत निर्देश दे बैठा। अब यहां एक सुंदर भवन का निर्माण करो।"

इस बार मुझसे रहा न गया और निवेदन किया – "गुरुवर! इस तरह बार–बार भवन बनाने और तोड़ने से मुझे तो कष्ट उठाना ही पड़ रहा है, साथ में आप की भी संपत्ति नष्ट हो रही है। अतः ठीक से विचार कर लेने के बाद ही आदेश दें।"

"इस बार मैं नशे में नहीं हूं। और ठीक से सोच विचार कर ही बोल रहा हूं। मुझे एक त्रिकोणाकार भवन चाहिए। जिस का नाम तंत्र–योगी भवन होगा। तुम काम शुरू करो। इसे तोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

मैंने काम आरम्भ कर दिया। तीन चौथाई काम होने तक सब ठीक चलता रहा। फिर एक दिन गुरु जी ने आकर आश्चर्यचकित होकर पूछा – "हे महान जादूगर, यह तुम किसका घर बना रहे हो? और किस के कहने पर?"

"गुरुदेव की आज्ञा से मैं उनके पुत्र के लिए यह भवन बना रहा हूं।" "लेकिन मुझे तो याद नहीं पड़ता कि मैंने ऐसी कोई आज्ञा दी हो। यदि तुम सच बोल रहे हो तो ज़रूर उस समय मुझे पागलपन का दौरा पड़ा होगा या फिर विस्मृति की हालत में कोई अनाप–शनाप बात कह दी होगी।"

मैंने निवेदन किया – "इसी लिए मैंने उस दिन आशंका जताते हुए आपको इस परिस्थिति के प्रति चेता दिया था और सम्यक् विचार के लिए निवेदन किया था। लेकिन आपने कहा था कि विचार कर लिया गया है और इसे तोड़ने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। ऐसा मुझे स्पष्ट याद है।"

"अच्छा तो उस दिन का कोई गवाह भी होगा! इस वीरान पर्वत पर त्रिकोणाकार यज्ञ कुण्ड जैसे इस भवन में बंद कर के हमें अपनी काली शक्ति का शिकार बनाना चाहते हो क्या? हमने न तो तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति लूटी है, न ही तुम्हारे बाप का कुछ खाया है। धर्म का काम करना चाहते हो तो तुरंत इस भवन में प्रयुक्त पत्थर व मिट्टी को यथा स्थान पहुंचाओ। अन्यथा भू–देवता अप्रसन्न हो जाएंगे। यदि सद्धर्म की शिक्षा चाहिए तो ऐसा करो नहीं तो भाग जाओ।"

मुझे अपरिमित दुःख का अनुभव हुआ। परंतु धर्म की प्यास इतनी तीव्र थी कि मैंने खुशी–खुशी गुरवाज्ञा का पालन किया। त्रिकोणाकार भवन की समस्त निर्माण सामग्री यथा स्थान पहुंचाई।

इस घटना के बाद मेरी पीठ के ऊपरी भाग की चमड़ी उधड़ आई। उस घाव से मर्मान्तक पीड़ा होती, लेकिन क्या करता? गुरु जी को दिखाता तो फटकार के सिवा क्या मिलता? गुरु माता को दिखाना उस पर अहसान जताने जैसा होता।

मैंने अपनी पीठ का वह घाव किसी को नहीं दिखाया और रोता रहा। मैंने गुरुमाता से प्रार्थना की कि धर्मोपदेश के लिए वे गुरु जी से बात करें।

उन्होंने गुरु से कहा –

"इस व्यर्थ के निर्माण एवं तोड़फोड़ से 'थुछेन' का जीवन दुःखों से ही समाप्त हो जाएगा। उस पर करुणा कीजिए। उसे धर्म का ज्ञान देकर अनुगृहीत कीजिए।"

गुरुजी ने कहा कि तुम तुरंत अच्छे पकवान तैयार करो और 'थुछेन' को मेरे पास लेकर आओ। गुरु माता ने वैसा ही किया। गुरु जी ने अपनी सफाई देते हुए कहा –

''महान जादूगर, आज तक मैंने कोई गलत काम नहीं किया है। मुझ पर मिथ्या आरोप मत लगाओ। तुम्हें धर्म का ज्ञान चाहिए, मैं अवश्य दूंगा।''

तब उन्होंने मुझे सामान्य त्रिशरण गमन का आगम प्रवचन तथा संवर भी प्रदान किए। ''यह सब सामान्य धर्म कहलाता है।'' गुरु जी ने कहा ''यदि तुम्हें असामान्य धर्म (तन्त्रोपदेश) चाहिए तो सुनो – – – '' तब उन्होंने नरोपाद की जीवनी, तपस्या और सिद्धि प्राप्ति की कथा संक्षेप में सुनाई और मुझ से कहने लगे कि यह सब तुमसे शायद ही हो पाएगा।

लेकिन मुझे कथा श्रवण मात्र से इतनी श्रद्धा उत्पन्न हुई कि अश्रु की धारा फूट पड़ी। गुरु जी के द्वारा जो कुछ भी कहा गया उसकी साधना की प्रतिज्ञा ली।

कुछ दिन बीतने के बाद गुरु जी ने कहा 'चलो जरा घूम आते हैं।'' मैं उनके पीछे –पीछे चल पड़ा। पुरखों द्वारा प्रतिबंधित उसी स्थान पर पहुंचकर कहने लगे – ''अब तुम इस स्थान पर हल्के पीले रंग का वर्गाकार भवन बनाओ जो कि नौ मंज़िला हो और ऊपर से एक सुंदर शीर्ष बनाओ। इस भवन को मैं नहीं तोड़ूंगा। इसके बन जाने पर मैं तुम्हें सिद्धि प्रदान करने वाला उपदेश दूंगा। साधना में लगाऊंगा और साधना के लिए आवश्यक सामग्री भी उपलब्ध करवाऊंगा।

मैंने कहा कि इस बार मैं गुरुमाता को साक्षी रखना चाहूंगा। गुरु जी ने कहा ठीक है। गुरु जी जब गृहाधार का नक्शा तैयार कर रहे थे तो मैंने गुरु माता को बुलाकर दोनों के समक्ष अपनी बात रखी।

''पहले भी तीन भवनों का निर्माण कर चुका हूं लेकिन तीनों तोड़ दिए गए। पहला भवन इस लिए तोड़ना पड़ा कि गुरु जी के अनुसार निर्माण से पहले ठीक से विचार ही नहीं किया था। दूसरा इस लिए तोड़ना पड़ा कि गुरु जी निर्देश देते समय नशे में चूर थे। तीसरा इस लिए तोड़ना पड़ा कि गुरु जी को याद ही नहीं आया कि उन्होंने ऐसी कोई आज्ञा दी थी। मेरे स्पष्टीकरण पर गुरु जी ने गवाह मांगा और मुझे फटकार सुननी पड़ी। इस बार फिर गुरुजी ने वादा किया है तो मैंने साक्षी के रूप में गुरुमाता को आमंत्रित किया है।

गुरुमाता ने कहा, 'मैं गवाह तो बनूंगी लेकिन गुरु जी की ज़िद के आगे मेरी गवाही का क्या असर हो सकता है'? अतः इस भवन का निर्माण करना व्यर्थ ही है क्योंकि इसे फिर से तोड़ डालना पड़ेगा। विशेषकर जबकि यह ज़मीन हमारी निजी संपत्ति नहीं है। यह गुरु माता के पितृपक्ष वालों की सांझी संपत्ति है। अतः यह भवन झगड़े की जड़ ही साबित होने वाला है। – – – लेकिन मेरी बात कौन सुनता है?''

इस पर गुरु जी ने कहा – ''तुम्हें साक्षी का पद दिया गया है, चुपचाप उसे निभाओ। मैं भी जैसी प्रतिज्ञा मैंने कर रखी है स्वयं उसे पूरा करूंगा। व्यर्थ में संदेह उत्पन्न करने से बेहतर होगा कि तुम यहां से चली जाओ।

जब मैं वर्गाकार गृह की नींव की चिनाई कर रहा था तो झुङ् के 'डोग्तोन छोस्दोर,' दोल के छुरतोन वङ डे और चङ्रोङ् के मेस्तोन छेन्पो आदि के द्वारा खेल ही खेल में लाए गए एक बड़े पत्थर को चिन दिया। ऊंचे द्वार के उपर तो मंज़िला तक चिनाई पूरी हुई तो मरपा आए। उन्होंने समस्त कार्यों का ठीक से निरीक्षण किया और सराहना करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की। लेकिन जब तीन महाशिष्यों द्वारा लाए गए पत्थर पर नज़र पड़ी तो रुक कर पूछने लगे ''थूछेन, यह पत्थर कहां से आया?''

फुट नोट – 1, बीस पत्थे का एक खल बनता हैं।

ओं मणि पद्में हूँ

– काल्मुक मंगोलियाई बौद्ध केन्द्र–न्यू जर्सी

'ऊँ' मणि पद्मे हूँ' मन्त्र बहुत हितकर है, परन्तु ऐसा करते समय इसके अर्थ को समझना चाहिए, क्योंकि इस षड़ाक्षरी मन्त्र का अर्थ विशद् एवं महान् है। 'ओं' में तीन अक्षर हैं–अ, उ तथा म। ये तीनों साधक के अपवित्र काय, वाक् अर्थात् वाणी तथा चित्त के प्रतीक हैं; वे बुद्ध की पवित्र एवं उत्कृष्ट काय, वाणी तथा चित्त के भी प्रतीक हैं।

क्या अपवित्र काय, वाक् तथा चित्त को पवित्र काय, वाणी तथा चित्त में परिवर्तित किया जा सकता है अथवा क्या वे बिलकुल अलग हैं? समस्त बुद्ध हमारे जैसे सत्त्व ही थे, जो कि मार्ग पर आरूढ़ होकर बोाधि को प्राप्त हुए। बौद्ध धर्म की यह धारणा नहीं है कि कोई भी व्यक्ति प्रारम्भ से ही दोष–रहित होता है तथा सर्वगुण–सम्पन्न होता है। पवित्र काय, वाणी तथा चित्त का विकास धीरे–धीरे अपवित्र अवस्थाओं का परित्याग कर उन्हें पवित्र अवस्थाओं में परिवर्तित करने से ही सम्भव होता है।

उपर्युक्त की प्राप्ति कैसे हो सकती है? यह अगले चार अक्षरों में निर्दिष्ट है।'मणि' उपाय (विधि) का प्रतीक है, अर्थात् पर–कल्याण की भावना से बोधि प्राप्ति का उपाय––करुणा तथा प्रेम। जिस प्रकार मणि द्वारा दरिद्रता दूर होती है, उसी प्रकार बोधि को प्राप्त पर–हितकारी चित्त भी संसार के कष्ट एवं दरिद्रता को दूर करने में सक्षम होता है। इसी प्रकार जैसे चिन्तामणि सत्त्वों की सब इच्छाओं की पूर्ति करता है, वैसे ही पर–हित भावना से युक्त व्यक्ति बोधि आकांक्षी सत्त्वों की आकांक्षाओं को फलीभूत करता है।

दो अक्षर वाला शब्द 'पद्म' (कमल) प्रज्ञा का प्रतीक है। जैसे कि कमल या पद्म कीचड़ में पैदा होता है, परन्तु उसके दोषों से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार प्रज्ञा आपको अद्वय ज्ञान की स्थिति तक पहुंचा सकती है, जबकि प्रज्ञा के अभाव में आप द्वैतभाव में लीन रहते हैं। प्रज्ञा होती है नश्वरता के ज्ञान की, प्रज्ञा होती है सत्त्वों और धर्मो के स्वतन्त्र अंस्तित्व तथा स्वायत्तता की शून्यता के ज्ञान की तथा द्वय–भांव से शून्यता के ज्ञान की अर्थात् विषय तथा विषयी के द्वैतभाव से शून्यता के ज्ञान की ओर, प्रज्ञा होती है स्वतः या स्वभावतः से शून्यता के ज्ञान की।

उपाय तथा प्रज्ञा की अविच्छिन्न युगनद्धता द्वारा ही काय, वाक्, चित्त की पवित्रता प्राप्त करनी चाहिए। इसका संकेत अन्तिम अक्षर 'हँ' में है, जो कि युगनद्धता का प्रतींक है। सूत्र प्रणाली के अनुसार यह उपाय तथा प्रज्ञा के ऐक्य का सूचक है अर्थात् उपाय पर प्रज्ञा तथा प्रज्ञा पर उपाय की निर्भता। मन्त्रयान तथा तन्त्रयान में इसको ऐसी समन्वित चेतना की संज्ञा दी गई है, जिसमें उपाय तथा प्रज्ञा पूर्णस्वरूप में एक अविच्छिन्न इकाई बन जाते हैं। पांच जिनों (बुद्धों) के बीजाक्षरों के सन्दर्भ में 'हूँ' शब्द अक्षोभ्य बुद्ध का बीजाक्षर है, जो कि अविचल है, अकम्प्य तथा स्थाणु है।

इस प्रकार इस षड़ाक्षरी मंत्र का अर्थ यह हुआ कि मार्ग, अर्थात् उपाय तथा प्रज्ञा का अविच्छिन्न ऐक्य है, इसकी चर्या के आधार पर अपने अपवित्र काय, वाणी तथा चित्त को बुद्ध के पवित्र तथा उत्कृष्ट काय, वाणी तथा चित्त में परिवर्तित कर सकते हैं। कहते हैं कि बुद्धत्व की खोज अपने से बाहर नहीं करनी चाहिए क्योंकि बुद्धत्व प्राप्ति के सब उपादान आपके भीतर ही विद्यमान हैं।

जैसे कि मैत्रेय ने उत्तरतन्त्र में कहा है: ''सब सत्त्वों की सन्तति में बुद्धत्व का बीज स्वाभाविक रूप से विद्यमान है।'' हम सब में पवित्रता का बीज है; हम सब तथागत–गर्भ हैं, जिसे हमें पूर्ण बुद्धत्व में परिवर्तित करना है।

'करुणा स्फुटाभता अन्तर्दृष्टि'

परम पावन दलाई लामा के प्रवचनों से उद्घृत

विशेष रपट

– सतीश लोप्पा

जब मृत काग जीवित हो उठे

आठ अक्तूबर, 2008, बुधवार, रात्रि के साढ़े दस–ग्यारह का समय, जनजातीय भवन, भुंतर का विशाल सभागार गणमान्य अतिथियों से खचा–खच भरा, समवेत मन्त्रोच्चार के बीच दशकों पूर्व मृत पांच दिक्–काग पुनः जीवित हो कर अपनी–अपनी दिशाओं की ओर उड़ गए।

जी नहीं, यह कोई जादू का कार्यक्रम नहीं था। यह अवसर था रंगबे गांव के श्री अभिषेक परशीरा एवं अयुष्मती मेहरुन्नीसा के शुभ विवाह का। एक परात में सजाए गए पांच फोरोग अथवा काग एवं इस अनुष्ठान की अन्य सामग्री दूल्हा–दुल्हन के समक्ष परम्परानुसार सजाए गए थे। बदाह गोम्पा के लामा जी ने ये काग स्वयम् अपने हाथों से बनाए थे। श्री बुध राम रूड़िंगबा की अगुवाई में सर्वश्री सतीश लोप्पा, बिशन दास परशीरा, राम नाथ भारंगबा, डॉ. शिव प्रकाश, डॉ. रवीन्द्र शाशनी, कवि अजेय आदि ने समवेत स्वर में फोरोग प्रेषण गीत गाया और गीत के माध्यम से पांचों कागों को विश्व के पांच ध्यानी बुद्धों के पास साक्षी हेतु भेज कर इस पुरातन रस्म को जीवन्त कर दिया। सुश्री डॉ. छिमे शाशनी इस शुभ अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित थीं। चन्द्रताल के पाठकों को अंक –24 में फोरोग प्रेषण पर छपा लेख अवश्य याद होगा। विवाह की इस रस्म को कई दशकों पूर्व त्याग दिया गया था। लाहुल के सांस्कृतिक इतिहास में यह एक ऐतिहासिक क्षण था जब इस काग प्रेषण रस्म को सफलतापूर्वक पुनर्जीवित किया गया। यह अपनी किस्म का पहला अवसर था जब किसी त्यक्त परंपरा को पुनः जीवित किया गया। इस शुभ अवसर पर न केवल फोरोग प्रेषण अपितु ब्रंगेस–शागुण की रस्म को भी पुनर्जीवित किया गया।

श्री बिशन दास परशीरा एवं श्री बीर सिंह परशीरा साधुवाद के परम पात्र हैं जिन्होंने अपूर्व निष्ठा एवं इच्छा शक्ति का परिचय देते हुए इस अनुष्ठान को संभव कर दिखाया और आगे भी ऐसा करते रहने का संकल्प लिया। एक साहसिक पहल हो चुकी है, अब सोचना शेष समाज को, यानि हम और आप को है कि यह अनुगमनीय है अथवा नहीं। इस में सेहणु वर्ग की सकारात्मक भूमिका सर्वाधिक वांछनीय होगी।

स्वंगला एरतोग

उदेश्य

1 सांस्कृतिक विरासत को संजोना व संकलित करना व उन्हें प्रकाश में लाना, पुनर्जीवित व संवर्धित करना।

2 लोक विधाओं को चिन्हित करना जो लुप्त होने के कगार पर हैं।

3 साहित्यिक रुचियों का विकास व सृजन के प्रति रुझान पैदा करना।

4 सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक उत्थान के लिए एक मंच बनाना जहां विचारों का सम्प्रेषण एवं जन प्रतिक्रिया का आकलन संभव हो।

स्वंगला एरतोग

लाहुल–स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु सोसायटी (रजि0)

151/1 रामशिला, अखाड़ा बाज़ार कुल्लू, हि0प्र0।
पिन 175101

सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860 के अधीन पंजीकृत संस्था ल0 स0 /42/93

स्वंगला एरतोग सोसायटी रजि0 के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा सीटी कंप्यूटर ढालपुर कुल्लू में टाईप, सैटिंग तथा गुप्ता प्रिंटर्ज़ कुल्लू से मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू से प्रकाशित।

संपादक सुश्री डॉ0 छिमे शाशनी।